आज के दौर में साम्राज्यवाद

विजय कुमार और अक्षय भाकपा (माले) रेड स्टार

(छठी अरविंद स्मृति अन्तरराष्ट्रीय संगोष्ठी में प्रस्तुत आलेख)

भूमिका

कम्युनिस्ट घोषणापत्र में इस बात की व्याख्या की गई है कि पूंजीपति वर्ग किस तरह ''असभ्यों को सभ्य बनाने'' के नाम पर, सभी प्रतिरोधों को कुचलते हुए दुनिया को लूटने के लिए निकल पड़ा था और सबसे बर्बर रूप में उपनिवेशीकरण की शुरूआत की थी। ''उत्पादन के तमाम औजारों में तीव्र उन्नति और संचार साधनों की विपुल सुविधाओं के कारण पूंजीपति वर्ग सभी राष्ट्रों को, यहां तक कि बर्बर से बर्बर राष्ट्रों को भी सभ्यता की परिधि में खींच लाता है। उसके माल की सस्ती कीमत एक ऐसा तोपखाना है जिसके जरिए वह सभी चीन की दिवारों को ढहा देता है, और विदेशियों के प्रति तीव्र और घोर घृणा रखने वाली बर्बर जातियों को आत्मसमर्पण के लिए मजबूर कर देता है। प्रत्येक राष्ट्र को, इस भय से कि अन्यथा वह लुप्त हो जायेगा, पूंजीवादी उत्पादन प्रणाली अपनाने के लिए मजबूर कर देता है; वह उन्हें मजबूर कर देता है कि जिसे वह सभ्य कहता है, उसे वे भी अपने बीच कायम करें, अर्थात् खुद पूंजीपति बन जायें। संक्षेप में, पूंजीपति वर्ग सारे जगत को अपने ही सांचे में ढाल देता है।''

लेनिन ने इस उपनिवेशीकरण के प्रक्रिया की विस्तार से विवेचना की है : ''उपनिवेशीक नीति और साम्राज्यवाद का अस्तित्व पूंजीवाद की इस नवीनतम मंजिल से पहले, यहां तक कि पूंजीवाद से भी पहले से था। रोम, जिसकी स्थापना दासता की बुनियाद पर हुई थी, उपनिवेशीक नीति का अनुसरण करता था तथा साम्राज्यवादी मार्ग पर चलता था। परन्तु साम्राज्यवाद के बारे में ''आम'' तर्क–वितर्क, जिनमें विभिन्न सामाजिक–आर्थिक ढांचों के मूलभूत अन्तर को भुला दिया जाता है या पीछे धकेल दिया जाता है, अनिवार्य रूप से बेहद जलील छिछोरेपन या ऐसी दंभपूर्ण तुलनाओं का रूप धारण कर लेते हैं, जैसे कि ''वृहत्तर रोम या वृहत्तर ब्रिटेन''। पूंजीवाद की **पूर्ववर्ती** अवस्थाओं की पूंजीवादी उपनिवेशीक नीति भी वित्तीय पूंजी की उपनिवेशीक नीति से मूलतः भिन्न है।''

''पूंजीवाद की नवीनतम अवस्था की मुख्य विशेषता बड़े–बड़े मालिकों के इजारेदाराना संघों का प्रभुत्व है। ये इजारेदारियां तभी सबसे अधिक दृढ़ होती हैं, जब कोई एक समूह कच्चे माल के **समस्त** स्त्रोतों पर कब्जा कर लेता है और हम देख चुके हैं कि अन्तर्राष्ट्रीय पूंजीवादी संघ इस बात के लिए किस प्रकार अपना पूरा जोर लगा देते हैं कि उनके प्रतिद्वन्दियों के लिए उनके साथ होड़ करना असम्भव हो जाये, कि, उदाहरण के लिए, वे खनिज लोहे के खदान–क्षेत्र, तेल स्रोत, आदि खरीद लें। अपने प्रतिद्वन्दियों के साथ संघर्ष की हर स्थिति में, यहां तक कि अगर प्रतिपक्षी राजकीय इजारेदारी कानून द्वारा भी अपना बचाव करना चाहें, तो उस स्थिति में भी इजारेदारियों को केवल उपनिवेशीक कब्जेदारियों से पूर्ण सफलता की गारंटी होती है। पूंजीवाद जितना ही विकसित होता है, कच्चे माल की कमी जितनी ही तीव्रता के साथ अनुभव होने लगती है, होड़ तथा सारी दुनिया पर कच्चे माल के स्रोतों की खोज जितना ही उग्र रूप धारण करती जाती है, उपनिवेशों को हथियाने का संघर्ष उतना ही ज्यादा प्रचण्ड होने लगता है।''

लेनिन ने साम्राज्यवाद के पांच बुनियादी लक्षणों की व्याख्या कि थी :

> ''(1) उत्पादन और पूंजी का संकेन्द्रण विकसित होकर इतनी ऊंची अवस्था में पहुंच गया है कि उसने इजारेदारियों को जन्म दिया है, जिनकी आर्थिक जीवन में निर्णायक भूमिका है; (2) बैंक पूंजी और औद्योगिक पूंजी मिलकर एक हो गई हैं और इस ''वित्तीय पूंजी'' के आधार पर वित्तीय अल्पतंत्र की

सृष्टि हुई है; (3) माल–निर्यात से भिन्न पूंजी–निर्यात ने असाधारण महत्व धारण कर लिया है; (4) अन्तर्राष्ट्रीय इजारेदार पूंजीवादी संघों का निर्माण हुआ है, जिन्होंने दुनिया को आपस में बांट लिया है; और (5) सबसे बड़ी पूंजीवादी ताकतों के बीच पूरी दुनिया का भौगोलिक बंटवारा पूरा हो चुका है। साम्राज्यवाद पूंजीवाद के विकास की वह अवस्था है, जिसमें पहुंचकर इजारेदारियों तथा वित्तीय पूंजी का प्रभुत्व दृढ़ रूप से स्थापित हो चुका है, जिसमें पूंजी का निर्यात अत्यधिक महत्व ग्रहण कर चुका है, जिसमें अन्तर्राष्ट्रीय ट्रस्टों के बीच दुनिया का बंटवारा आरम्भ हो गया है, जिसमें सबसे बड़ी पूंजीवादी ताकतों के बीच भूमण्डल के समस्त क्षेत्रों का बंटवारा पूरा हो चुका है।''

साम्राज्यवाद के बारे में अपने अध्ययनों में लेनिन ने बताया है कि उपनिवेशीकरण की प्रक्रिया कितनी बहु–आयामी, जटील और असमान थी। उन्होंने उपनिवेशिक लूट के शिकार देशों मुख्यतः तीन श्रेणियों में बांटा था : पहला, बड़ी संख्या में एशिया और अफ्रीका के देश जो यूरोपीय साम्राज्यवादी देशों द्वारा, जिसमें ब्रिटेन सबसे आगे है, पूरी तरह नियंत्रित और प्रत्यक्ष रूप से शासित उपनिवेश हैं; दूसरा, इस अंचल के वे चन्द देश जो संक्रमणकालीन अवस्था में हैं, जहां उपनिवेशीकरण की प्रक्रिया अभी भी पूरी नहीं हुई है; और तीसरा, वे आश्रित देश जिनके तहत लेनिन ने मोटे तौरपर दक्षिणी अमेरिका के देशों को शामिल किया था।

नव–उपनिवेशवाद का उद्‌भव

1940 के दशक के शुरूआती वर्शों से, यहां तक कि द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति से भी पहले, चूंकि ब्रिटिश साम्राज्यवाद कमजोर पड़ने लगा था, अमेरिकी साम्राज्यवाद साम्राज्यवादी शिविर के नेता के रूप में उभरने लगा था। दुनिया में अपना वर्चस्व स्थापित करने के लिए इसने दो चुनौती भरे कार्यभारों का सामना किया। पहला, उसे अपने स्वयं के हित में ''वि–उपनिवेशीकरण'' (de-colonisation) की प्रक्रिया के जरिए पुराने उपनिवेशिक ढांचे को छिन्न–भिन्न करते हुए साम्राज्यवाद के आपस के अन्तर्विरोधों को इस तरह हल करना था कि उपनिवेशिक देशों को औपचारिक स्वतंत्रता देते हुए अमेरिकी साम्राज्यवाद के प्रवेश के लिए संसाधनों और बाजार को खोला जाये। दूसरा, इसे लगातार तेज होते राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलनों की बढ़ती चुनौती का सामना करना था जिसे सोवियत संघ के नेतृत्व में समाजवादी ताकतों की बढ़ती ताकत का समर्थन प्राप्त था।

इस जटील और चुनौती भरी विश्व परिस्थिति में अमेरिकी साम्राज्यवाद ने उपनिवेशीकरण को नया स्वरूप और अन्तर्वस्तु प्रदान किया। इस दिशा में पहला कदम था 1944 में सम्पन्न *ब्रेटनवुड्स समझौता*, जिसने अमेरिकी प्रभुत्व के मातहत *पुनर्निर्माण और विकास के लिए अन्तर्राष्ट्रीय बैंक* या *विश्व बैंक* तथा *अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष* (IMF) को जन्म दिया। विश्व बैंक ने द्वितीय विश्व युद्ध में पराजीत और कमजोर पड़ गये अन्य साम्राज्यवादी देशों को और साथ ही 'नव–स्वतंत्र देशों' को, जहां प्रत्यक्ष उपनिवेशिक भाासन का अन्त कर देशी दलाल वर्गों को राजनीतिक सत्ता का हस्तांतरण किया गया था, मदद और ऋण के माध्यम से वित्तीय पूंजी का निर्यात तेज करने, उसका नियमन और नियंत्रण करने के लिए एक कारगर नव–उपनिवेशिक संस्था के रूप में काम किया। दूसरी तरफ, आई.एम.एफ. ने साम्राज्यवादी मौद्रिक हुक्मशाही, खासकर नव–उपनिवेशिक देशों के भुगतान संतुलन के समायोजन के संबंध में, लादने वाली राष्ट्रोपरी एजेन्सी की भूमिका अख्तियार कर लिया। इसके साथ ही, विश्व व्यापार पर साम्राज्यवादी नियंत्रण कायम करने के लिए विभिन्न व्यापारिक गुटों के निर्माण के साथ–साथ 1948 में *शुल्क और व्यापार के बारे में आम समझौता* (गैट करार) किया गया, जो आज विश्व व्यापार संगठन (WTO) के रूप में हमारे सामने है। मानव एवं प्राकृतिक संसाधनों, विज्ञान एवं तकनीक तथा पूंजी एवं बाजार व्यवस्था पर निरंतर सुदृढ़ होते वैश्विक नियंत्रण के साथ पूंजी निर्यात के मुख्य स्वरूप के बतौर पुराने कार्टेलों को बहुराष्ट्रीय निगमों (MNCs) में तब्दील कर दिया गया। राजनीतिक स्तर पर, अमेरिकी साम्राज्यवाद ने अन्तर्राष्ट्रीय

स्तर पर अपना घृणित नव–उपनिवेशिक नियंत्रण कायम करने के लिए *संयुक्त राष्ट्र संघ* (UNO) और इसकी सुरक्षा परिषद को उसके गठन के समय से ही एक राजनीतिक औजार के रूप में देखा था

वैसे तो साम्राज्यवाद की गति का नियम पूरे साम्राज्यवादी युग में बुनियादी तौर पर एक सा बना रहता है, तथापि साम्राज्यवाद के इस नव–उपनिवेशिक चरण में जो गुणात्मक बदलाव आये हैं उसकी पहचान करना महत्वपूर्ण है। साम्राज्यवाद के एक बुनियादी लक्षण के रूप में भौगोलिक बंटवारे का लक्षण करीब–करीब समाप्त हो गया है। हालांकि सभी अंचलों में युद्ध, और वह भी बर्बर हमलावर युद्ध जारी हैं, लेकिन पिछले साठ साल से ज्यादा समय से भौगोलिक बंटवारे के लिए साम्राज्यवादी शक्तियों के बीच आपस में युद्ध, या कहा जाये कि प्रत्यक्ष रूप से अन्तर–साम्राज्यवादी युद्ध नहीं हुआ है।

दूसरा महत्वपूर्ण बदलाव नव–उपनिवेशिक प्रभुत्व के मातहत देशों के कृषि क्षेत्र में आया है। उपनिवेशिक दौर में साम्राज्यवादी शक्तियों ने इन देशों में अपने आपको स्थापित करने और अपने प्रभुत्व को दीर्घस्थायी बनाने के लिए अपने सामाजिक आधार के रूप में सामन्ती, अर्द्ध–सामन्ती और प्राक्–पूंजीवादी सम्बन्धों का इस्तेमाल किया था। यहां तक कि साम्राज्यवादी केन्द्रों की जरूरत को पूरा करने के लिए नगदी फसलों के उत्पादन के लिए भी उस समय के उत्पादन सम्बन्धों में केवल सतही बदलाव ही किये गये थे। किन्तु नव–उपनिवेशिक परिस्थितियों में हालात में उल्लेखनीय बदलाव आया है। 1950 के दशक के आरम्भ में ही साम्राज्यवादी एजेन्सियों ने पुराने सामन्ती भूस्वामियों की जगह धनी किसानों और कृषि पूंजीपति वर्ग को स्थापित करने के लिए 'ऊपर से भूमि सुधार' को प्रोत्साहित करना शुरू कर दिया था, क्योंकि इनके माध्यम से ही पूंजी, बाजार की ताकतें और आधुनिक तकनीक का कृषि क्षेत्र में प्रवेश हो सकता था। नव–उपनिवेशीकरण के तहत साम्राज्यवादी व्यवस्था ने कृषि क्षेत्र में सामन्ती, अर्द्ध–सामन्ती सम्बन्धों को अपने सामाजिक आधार के रूप में देखना बन्द कर दिया है।

साम्राज्यवाद अपने नव–उपनिवेशिक चरण में

यह एक तथ्य है कि हर चीज सदैव परिवर्तनशील रहती है। यह बात उस परिघटना के लिए भी सही है जिसे हम साम्राज्यवाद के नाम से जानते हैं। पहले की तमाम व्यवस्थाओं के समान ही, साम्राज्यवाद भी जड़स्थिर नहीं रह सकता है और नये–नये रूप ग्रहण करते हुए इसका निरंतर क्रमिक विकास होता रहा है। बीसवीं सदी के आरम्भ में, जब साम्राज्यवाद अपने उपनिवेशिक चरण में था, तब लेनिन ने साम्राज्यवाद का शास्त्रीय सिद्धान्त पेश किया था और इसके सारभूत लक्षणों को बताया था। पूंजीवाद के साम्राज्यवादी चरण के वे सारभूत लक्षण जो बीसवीं सदी के आरम्भ में प्रकटतः नजर आते थे और लेनिन ने जिनकी पहचान की थी, जैसे कि सम्पत्ति का संकेन्द्रण और अन्तरराष्ट्रीय इजारेदारियों के गठन की शुरूआत, वित्तीय पूंजी का उद्भव और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में इसका प्रभुत्व, साम्राज्यवाद द्वारा आश्रित एवं कमजोर राष्ट्रों का उत्पीड़न और लूट, सैन्यवाद का व्यापक विस्तार, आदि, ये सभी सारभूत लक्षण एक प्रक्रिया के रूप में लगातार सुदृढ़ होते रहे हैं। निश्चित ही, जब लेनिन *''पूंजीवाद : साम्राज्यवाद की चरम अवस्था''* लिख रहे थे और इसके जरिए पूंजीवाद के गुणात्मक रूप से इस नये चरण के मूलभूत पहलुओं की परतों को उजागर कर रहे थे तो *उनकी मंशा इसे साम्राज्यवाद के समाधी–लेख (अंतिम वाक्य) के रूप में लिखने की नहीं थी*। शोधकर्ताओं ने हाल में एकदम से चौंकाने वाला खुलासा किया है कि लेनिन की इस किताब का मूल शीर्षक *''साम्राज्यवाद : पूंजीवाद की नवीनतम अवस्था''* था।

आज यह मत सर्वमान्य है कि इक्कीसवीं सदी के साम्राज्यवाद ने ऐसे अनेक नये रूप ग्रहण किया है जिसका और ज्यादा विश्लेषण करने की जरूरत है। बेशक, लेनिन की पथ प्रदर्शक पुस्तक में जिन बुनियादी मापदण्डों को निरूपित किया गया है, वह आज भी वित्तीय पूंजी को समझने की अपरिहार्य मुख्य कुंजी है। इस नजरिये से देखने पर, आज हमारे समक्ष चुनौती यह है कि हम लेनिन के पथ प्रदर्शक

विश्लेषण के सच्चे सारतत्व को आत्मसात करते हुए, पूंजी के अन्तरराष्ट्रीयकरण की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में, इक्कीसवीं सदी के साम्राज्यवाद के ठोस यर्थाथ को उजागर करें।

आज की परिस्थिति काफी जटील है। मिसाल के लिए, आज वामपंथी खेमों में यह चर्चा का विषय है कि साम्राज्यवादी संरचना की प्रस्थापनाएं अपनी जगह से डिग गई हैं। इसे बीसवीं सदी से विरासत में मिले साम्राज्यवादी पदानुक्रम (imperialist hierarchy) का ''पुनर्गठन'' कहा जा रहा है। उदाहरण के लिए, वित्तीय पूंजी के अन्तरराष्ट्रीयकरण के इस दौर में, पूंजी के संचय और प्रचलन दोनों ने जटील आयाम ग्रहण कर लिये हैं। इसके अनुरूप, 'पूंजी का निर्यात', जिसे लेनिन ने साम्राज्यवाद के एक सारभूत लक्षण के रूप में चिन्हित किया था, उन देशों से भी होता दिख रहा है जो 'आश्रित' और उत्पीड़ित देश हैं। यह देखकर वामपंथी खेमे के कुछ लोग इस रूझान की व्याख्या यह कहते हुए करने लगे हैं कि ''नव–उपनिवेशिक रूप से आश्रित'' देशों में से कई देश ''नव–साम्राज्यवादी देश' में तब्दील हो गये हैं। इसके अलावा, वित्तीय ऊपरी ढांचे में, जिसे ''वित्तीयकरण'' कहा जाता है, बेहिसाब और बेकाबू वृद्धि और इसके साथ ही ''डिजिटलीकरण'' की प्रक्रिया इस ''पुनर्गठन'' के लिए उत्प्रेरक के रूप में काम कर रही है। वे कहते हैं कि यह भी बीसवीं सदी के साम्राज्यवाद से आज के वैश्वीकृत साम्राज्यवाद के स्पष्ट फर्क को दर्शाता है।

एक अन्य स्तर पर, 1960 के दशक के अन्त से शुरू हुई अन्तरराष्ट्रीय उत्पादन के नव–उदारवादी पुनर्गठन तथा श्रम के एक नये अन्तरराष्ट्रीय विभाजन के चलते दुनिया भर में मजदूर वर्ग का बड़े पैमाने पर ''असंगठन'' और ''अनौपचारिकीकरण'' हुआ। हालांकि सभी जगहों पर मजदूरों और उत्पीड़ित जन समुदायों का स्वतःस्फूर्त संघर्ष हो रहा है जिन्हें कठोर संघर्षों से प्राप्त जनवादी अधिकारों से वंचित कर दिया है और जिनकी वास्तविक मजदूरी में निराशाजनक रूप से भारी गिरावट आयी है और जिनकी क्रय शक्ति घटी है, किन्तु पूंजी की गति के मौजूदा नियमों की गुत्थी को सुलझाने में वामपंथ की वैचारिक व राजनीतिक कमजोरी और इससे जनित बिखराव के फलस्वरूप शासक वर्गों को वित्तीय बाजारों की स्थिति को मजबूत कर और जनता के खिलाफ अपना हमले तेज कर संकट से निपटने के लिए जोड़तोड़ करने का पर्याप्त मौका मिल रहा है। वर्तमान समय की ठोस परिस्थितियों के अनुरूप लेनिन के दृष्टिकोण को आगे ले जाने के लिए तथा दुनिया के मजदूरों और उत्पीड़ित जनता के खिलाफ वित्तीय पूंजी के प्रतिक्रान्तिकारी हमले का सफलतापूर्वक प्रतिरोध करने के लिए यह अपरिहार्य है कि इक्कीसवीं सदी के साम्राज्यवाद के गति के नियमों के बारे में हमारी समझ ज्यादा स्पष्ट हो।

साम्राज्यवाद क नये चरण के प्रति संशोधनवादी दृष्टिकोण और नव–उपनिवेशवाद

साम्राज्यवाद के इक्कीसवीं सदी की नव–उदारवादी प्रवृत्तियों का विकास कोई रातोंरात घटित नहीं हुआ है। इसके उलट, हमें इन प्रवृत्तियों को द्वितीय विश्व युद्ध के बाद साम्राज्यवाद के नव–उपनिवेशिक चरण के सम्पूर्ण विकासक्रम में रखकर देखना होगा। 1940 के दशक में समाजवादी ताकतों की अग्रगति और राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलनों की लहर ने एक ऐसी अन्तरराष्ट्रीय पृष्ठभूमि तैयार कर दी थी जिसने साम्राज्यवाद को वह कदम उठाने के लिए मजबूर कर दिया जिसे प्रायः ''अनौपनिवेशीकरण'' (उपनिवेशों से हटना, या de-colonisation) कहा जाता है। इस कदम की व्याख्या उपनिवेशवाद से नव–उपनिवेशवाद में रूपांतरण के रूप में की गई। भूतपूर्व उपनिवेशिक देशों में दलाल वर्गों के हाथ में सत्ता के हस्तांतरण के जरिए पूंजी का विश्व स्तर पर अबाध रूप से विस्तार होता रहे, इसे सुनिश्चित करने के लिए यह मुखौटा पहना गया था। इस प्रकार, जब प्रभुत्व और लूट का उपनिवेशिक तरीका कारगर नहीं रह गया तो अमेरिका की अगुवाई में, जो तब तक साम्राज्यवादी खेमे का नेता और सर्वोच्च पंच बनकर उभर चुका था, ऐसी तमाम राजनीतिक, आर्थिक, सैन्य, कानूनी और यहां तक कि सांस्कृतिक संस्थाओं एवं औजारों को निर्मित किया

गया जो परस्पर एक–दूसरे से गुथी हुई थीं। इन्हें उपनिवेशवाद से नव–उपनिवेशवाद में रूपांतरण और पुनर्विन्यास के लिए गढ़ा गया था। इसने वित्तीय पूंजी के विश्व स्तर पर अबाध विस्तार को एक गुणात्मक आयाम प्रदान किया।

जब साम्राज्यवाद द्वारा उपनिवेशीकरण के पुराने स्वरूप को नये स्वरूपों में, नव–उपनिवेशीकरण में बदला जा रहा था तो ऐसे समय में द्वितीय विश्व युद्ध के बाद के विकासक्रम को समझने के प्रति त्रुटिपूर्ण नजरिया कितना गंभीर था, यह दुनिया भर में हो रही अनेक घटनाओं से जल्द ही उजागर होने लगा था। इन खामियों को दूर करने का प्रयास करने के बजाय, सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी के बीसवें महासम्मेलन में और आगे भी स्तालिन की 'व्यक्ति पूजा' की वजह से पैदा हुई गलतियों को हमले का मुख्य निशाना बनाया गया। 1950 के दशक के उत्तरार्द्ध में कुछ किताबें प्रकाशित हुई थीं, जिनमें नव–उपनिवेशों की परिभाषा ऐसे देश के रूप में की गई थी जो अमेरिकी साम्राज्यवाद के पूर्ण प्रभुत्व के अधीन थे। नव–उपनिवेशीकरण के तहत हो रहे महत्वपूर्ण बदलावों और युगोस्वालिया को पूंजीवादी रास्ते में पतित करने में इसकी भूमिका को गंभीरता से नहीं लिया गया और सोवियत संशोधनवादी नव–उपनिवेशवाद के पैरोकार के रूप में आचरण करने लगे। साम्राज्यवादी खेमे की चुनौती को कम करके आंकते हुए सोवियत संशोधनवादियों ने कम्युनिस्ट पार्टियों के सामने *'साम्राज्यवाद के साथ शान्तिपूर्ण प्रतियोगिता और शान्तिपूर्ण सह–अस्तित्व एवं समाजवाद में शान्तिपूर्ण संक्रमण'* की आम दिशा पेश की। 1957 और 1960 में कम्युनिस्ट पार्टियों की मास्को बैठकों के दौरान इस सोवियत संशोधनवादी दिशा के विरूद्ध वैचारिक संघर्ष हुआ था। इनमें स्वीकृत घोषणापत्र और वक्तव्य में इस संघर्ष की झलक तो दिखती है, तब भी वे सोवियत नेतृत्व के संशोधनवादी अवस्थानों से बुनियादी तौरपर नाता नहीं तोड़ सके।

नव–उपनिवेशवाद के बारे में सुसंगत मार्क्सवादी–लेनिनवादी सूत्रीकरण सर्वप्रथम माओ त्से तुंग के नेतृत्व में चीन की कम्युनिस्ट पार्टी (CPC) द्वारा पेश किया गया था। यह सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी (CPSU) के बीसवें महाधिवेशन के बाद ख्रुश्चेवी संशोधनवाद के खिलाफ उसके द्वारा छेड़े गये तीखे वैचारिक संघर्ष का हिस्सा था, जिसने औपचारिक रूप से **''उपनिवेशवाद के विलोप''** का सिद्धान्त पेश किया था। चीन की कम्युनिस्ट पार्टी ने नव–उपनिवेशवाद को ''समसामयीक विश्व राजनीति का एक अत्यन्त धारदार मुद्दा'' बताते हुए, इसे ''उपनिवेशवाद के ज्यादा घातक और भयावह रूप'' के बतौर चित्रित किया था। हालांकि चीन की कम्युनिस्ट पार्टी ने सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी के विरूद्ध अपनी बहस में नव–उपनिवेशवाद की सही व्याख्या की थी। लेकिन, जैसा कि हम सब जानते हैं कि चीन में आगे चलकर वाम–दुस्साहसवाद के उभार के कारण, जिसने इस बुनियाद पर अपने सिद्धान्त को खड़ा था कि ''साम्राज्यवाद कमजोर पड़ चुका है'', चीन की कम्युनिस्ट पार्टी नव–उपनिवेशवाद के बारे में ठोस विश्लेषण को गहराई में ले जा पाने में असफल रही। बहरहाल, द्वितीय विश्व युद्ध के बाद के विकासक्रम का वस्तुगत विश्लेषण करने पर यह एकदम साफ हो जाता है कि नव–उपनिवेशवाद के बारे में चीन की कम्युनिस्ट पार्टी का मूल मूल्यांकन वास्तव में यर्थाथ के अनुरूप था।

साम्राज्यवाद : कीन्सवाद से नव–उदारवाद तक

जब 1930 के दशक में **महामन्दी** ने दुनिया को अपनी आगोश में ले लिया था तो इसके जवाब में कीन्सवाद (पूंजीवादी अर्थशास्त्री जॉन मेनार्ड कीन्स द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त) सामने आया था जिसने पूंजीवादी राजसत्ता को नई परिभाषा दी और उसे आर्थिक मामलों में सक्रिय हस्तक्षेप करने के लिए कहा। यह वह दौर था जब एक तरफ युद्ध के दौरान भी सोवियत संघ की आर्थिक प्रगति और दूसरी तरफ फासीवाद के खिलाफ प्रतिरोध की कामयाबी के कारण विश्व कम्युनिस्ट आन्दोलन की प्रतिष्ठा में भारी वृद्धि हुई थी। इसके मद्देनजर साम्राज्यवाद ने ''साम्यवादी खतरे'' से लड़ने के लिए अपने वैचारिक हथियार के रूप में कीन्सवाद और साथ में शीत युद्ध का लगभग पचीस वर्षों तक प्रयोग किया। कुल मिलाकर,

1970 के दशक तक अन्तरराष्ट्रीय कीन्सवाद का मुखौटा लगाकर नव–उपनिवेशवाद पर अमल किया गया। इसके जरिए, 1930 के दशक के विपरीत, वित्तीय सट्टेबाजी द्वारा डाले जाने वाले उग्र व्यवधानों से बचा गया। इस प्रकार यह पूंजीवाद के लिए संकट–मुक्त ''स्वर्ण युग'' जैसा था।

साम्राज्यवाद द्वारा, अपने विश्वस्त सहयोगी के रूप में, भूतपूर्व उपनिवेशों या नव–उपनिवेशिक देशों के दलाल शासक वर्गों के साथ घनिष्ठ गठजोड़ के कारण इन देशों का दुनिया के पैमाने पर विस्तार कर रही वित्तीय पूंजी के साथ एकीकरण की प्रक्रिया भी तेज हुई। इस बीच, कीन्सवादी नीतियों, सार्वजनिक क्षेत्र और राजकीय पूंजीवाद के अन्य स्वरूपों की, जिसे साम्राज्यवाद ने अपने संकट से उबरने के लिए प्रोत्साहन दिया था, उस दक्षिणपंथी अवसरवादी और संशोधनवादी खेमे ने गलत व्याख्या की जिन्होंने ख्रुश्चेव के ''समाजवाद में शान्तिपूर्ण संक्रमण'' के सिद्धान्त को अपना लिया था। इन लोगों ने इसे योजनाबद्ध समाजवादी विकास की ओर स्वचालित कदम बताया। किन्तु इनका वैचारिक दिवालियापन उस समय पूरी तरह उजागर हो गया जब 1970 के दशक के संकट के बाद नौकरशाही पूंजीपति और सरकारी व सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के भूतपूर्व मुख्य कार्यकारी अधिकारी (CEO) गैरकानूनी वित्तीय सट्टेबाजों के साथ मिलीभगत कर वि–राष्ट्रीयकरण और विनियमन के प्रवक्ता बन गये।

1950 और 1960 के दशक में नजर आने वाले पूंजीवादी ''छलांग'' की मुख्य जड़ अमेरिकी साम्राज्यवाद का आर्थिक, राजनीतिक व सैन्य वर्चस्व कायम होने तथा युद्ध से लस्त–पस्त अन्य साम्राज्यवादी देशों से प्रतिद्वन्द्विता के अभाव में अमेरिकी मुद्रा डालर की फलती–फूलती भूमिका में निहित थी। इस अवधि के दौरान, जहां एक तरफ ''शीत युद्ध'' के माध्यम से एक नया शक्ति संतुलन बनाया गया और वित्तीय पूंजी का वैश्विक विस्तार किया गया एवं उसकी बहुआयामी घुसपैठ करायी गई, वहीं दूसरी तरफ जनता की आँख में धूल झोंकने के लिए संयुक्त राष्ट्र द्वारा प्रयोजित विकास के दशक, कल्याणकारी राज्य, आयात प्रतिस्थापन (यानी आयात करने के बजाय स्थानीय स्तर पर उत्पादन पर जोर), अन्दर की ओर देखने की नीति, आदि का इस्तेमाल किया गया। कीन्सवाद की छतरी के तहत सम्पदा के एक अच्छे–खासे हिस्से को राजकीय खजाने में इकट्ठा किया गया, जिसके लिए क्रमशः बढ़ती मात्रा में टैक्स लगाने की प्रगतिशील कर प्रणाली और घाटे के बजट का रास्ता अपनाया गया तथा कारपोरेट पूंजी के सुचारू एवं जोखिम–मुक्त संचालन के लिए आवश्यक आधारभूत ढांचे का निर्माण किया गया। साम्राज्यवादी सिद्धान्तकारों द्वारा राजकीय नियमन के जरिए एक ''संकट मुक्त पूंजीवाद'' छवि भी पेश की गई।

किन्तु 1960 के दशक के अन्त में यूरोप और जापान की युद्ध से तबाह अर्थव्यवस्थाएं फिर से पटरी पर आ गई थीं और वे अमेरिका को प्रभावी ढंग से देने लगे थे, जबकि दूसरी तरफ अमेरिका द्वारा राज्य के नेतृत्व में मुद्रास्फीति फैलाने वाले वित्तपोषण, भारी–भरकम सैन्य खर्च और महाशक्ति बने रहने की प्रतिबद्धता के बोझ के कारण उसके पाये डगमगाने लगे थे। इस स्थिति में, कीन्सवादके केन्द्रीय तर्कों को नकार कर अमेरिका और फिर उसका अनुशरण करते हुए ब्रिटेन एवं अन्य देश अंधाधुंध मुद्रास्फीति, औद्योगिक उत्पादन में भारी गिरावट और बेरोजगारी की समस्या से जूझने लगे। हालांकि द्वितीय विश्व युद्ध के बाद के शुरूआती वर्षों में आये उछाल के दौरान अन्तराष्ट्रीय कीन्सवाद के तहत वित्त का अबाध विस्तार हुआ था, किन्तु आगे चलकर उत्पादक विकास पर वित्तीय विकास भारी पड़ने लगा और इससे जो स्थिति निर्मित हुई उसे *ठहरास्फीति* (Stagflation) के रूप में परिभाषित किया गया।

ठीक–ठीक कहें तो वित्त पूंजी की सट्टेबाज प्रवृत्ति और इसके साथ जुड़ी मन्दी लाने वाली ताकतें, जिसे लेनिन ने जोर देकर चिन्हित किया था और जो 1929 में वित्त व्यवस्था के ध्वंस और 1930 के दशक में आयी महामन्दी से पूरी तरह स्पष्ट हो गया था, किन्तु राजकीय नियमन के जरिए जिन्हें अनुशासन में रखा गया था और उन पर छलावरण डाल दिया गया था, वे इस बीच मजबूत होती गई और 1970 के दशक में ठहरास्फीति के संकट के रूप में प्रकट हुईं। उस समय तक, बहुराष्ट्रीय निगमों और वैश्विक वित्तीय थैलीशाहों द्वारा, खासकर उनके द्वारा जिनकी जड़ अमेरिका में थी, दुनिया के मौद्रिक प्रवाह की

धमनियों में भारी मात्रा में वित्त इकट्ठा किया जा चुका था। इसमें पेट्रोलियम तेल सम्पन्न देशों के शेखों द्वारा अर्जित पेट्रो–डालर की विशाल राशि भी शामिल थी जिसे उन लोगों ने अमेरिकी और यूरोपीय पार–राष्ट्रीय बैंकों में जमा कर रखा था। किन्तु इसका अत्यन्त मुनाफादेह तरीके से नियोजन नहीं किया जा सकता था क्योंकि जनता की घटती क्रय शक्ति की वजह से उत्पादक क्षेत्रों में ठहराव आने लगा था। इसके कारण मुनाफे में आ रही कमी को दूर करने का उपाय यही था कि वित्तीय सट्टेबाजी के नये रास्ते खोले जायें या संचय प्रक्रिया में एक बदलाव लाया जाये।

1970 के दशक में हालात कुछ अलग थे जिसका फायदा उठाकर अमेरिका की अगुवाई वाला साम्राज्यवाद नव–उपनिवेशिक संचय की प्रक्रिया में बदलाव लाने में सफल रहा। उसने आर्थिक नीतियों की धार को कीन्सवाद से नव–उदारवाद या मुद्रावाद की ओर मोड़ दिया। इसकी शुरूआत साम्राज्यवादी देशों में थैचरवाद और रीगनवाद के नाम से हुई। फिर इन नव–उदारवादी नीतियों ने धीरे–धीरे सभी नव–उपनिवेशिक देशों को अपने आगोश में ले लिया और शीत युद्ध की समाप्ति के बाद 1990 के दशक में भूमण्डलीकरण के माध्यम से इसने तेज गति प्राप्त कर ली। इसके फलस्वरूप 'कल्याणकारी राज्य' का आकार छोटा होता गया और उसके कदम पीछे हटते गये। पूंजी के मुक्त प्रवाह पर पहले जो पाबन्दियां थीं उसे खत्म कर दिया गया। नतीजे में, पतनशीलता और परजीवीपन, जो वित्तीय पूंजी के खास लक्षण हैं, जिनकी पहचान लेनिन ने की थी, उसने भयावह आकार ग्रहण कर लिया। इसके अलावा, साम्राज्यवाद के आरम्भिक चरण के विपरीत, जब सट्टेबाजी का बुलबुला अपने लिए उत्पादक अर्थव्यवस्था से पोषक तत्व चूसा करता था, इस नव–उदारवादी दौर में वित्तीय सट्टेबाजी ने ठहराव की शिकार और मरणशील अर्थव्यवस्था के कूड़े पर फलना–फूलना शुरू कर दिया

नव–उपनिवेशवाद के इस नव–उदारवादी दौर की खास पहचान है सट्टा पूंजी का बेलगाम अन्तरराष्ट्रीय प्रवाह। इसके लिए एक तरफ तो वामपंथ को लगे वैचारिक धक्के का और दूसरी तरफ इक्कीसवीं सदी की शुरूआत में सूचना एवं संचार तकनीकी और डिजिटलीकरण के क्षेत्र में हुई भारी उन्नत्ति का प्रभावी ढंग से इस्तेमाल किया गया। सभी तरह के कीन्सवादी राजकीय नियंत्रण एवं नियमों से एक बार आजाद हो जाने पर, वित्तीय पूंजी के वे सभी सारभूत लक्षण जिन्हें लेनिन ने चिन्हित किया था, जैसे कि सट्टेबाजी, पतनशीला और परजीवीपन, वित्तीय भूमण्डलीकरण के जरिए ज्यादा जोरदार ढंग से उभरकर सामने आने लगे। एक तरफ वित्तीयकरण और कारपोरेटीकरण और दूसरी तरफ उत्पादक गतिविधियों में ठहराव और औद्योगिक विनाश की प्रक्रिया से जन्म लेती अभूतपूर्व बेरोजगारी परिणाम यह हुआ है कि मुट्ठीभर वित्तीय थैलीशाहों के हाथ में सम्पत्ति का इतना ज्यादा केन्द्रीकरण हो चुका है जो पहले कभी नहीं देखा गया था। इसी का परिणाम है गैर–बराबरी की अभूतपूर्व खाई, गरीबी और वंचना, भ्रष्टाचार, सांस्कृतिक पतन और पर्यावरण की भयावह त्रासदी। संकट काफी गहरा है। इसकी झलक इस बात में देखी जा सकती है कि दुनिया की जनता, खासकर पश्चिम एशिया और उत्तरी अफ्रीका में अमेरिका और यूरोप द्वारा किये जा रहे अनवरत हमलों और लूट के क्रम में पैदा हुआ अन्तरराष्ट्रीय ''शरणार्थी संकट'' असाध्य रूप ले चुका है, वहीं दूसरी तरफ साम्राज्यवाद द्वारा शासन व्यवस्था के विरूद्ध जनता के खदबदाते असंतोष को पथभ्रष्ट करने के लिए शरणार्थी–विरोधी, अन्ध–राष्ट्रवादी, नव–फासीवादी, नस्लवादी और धार्मिक कट्टरपंथी ताकतों प्रश्रय दिया जा रहा है। इस साम्राज्यवादी हमले के एक अविभाज्य घटक के रूप में जनता को राजनीतिक चेतना से विमुख करने के लिए उत्तर–आधुनिक, उत्तर–मार्क्सवादी और ''पहचानवादी'' सिद्धान्तों को गढ़ा गया है और साम्राज्यवादी चिंतक समूहों और नव–उदारवादी फण्डिंग व शोध संस्थाओं द्वारा इन्हें प्रचारित किया गया है। साथ में, ''इतिहास का अन्त'' और ''विचारधारा का अन्त'' जैसी भविष्यवाणियां की गई हैं।

उपरोक्त पृष्ठभूमि में अवस्थित समसामयीक साम्राज्यवाद की प्रमुख प्रवृत्तियों के कुछ सुनिश्चित लक्षण हैं जो इसे उपनिवेशिक चरण से गुणात्मक रूप से भिन्न बनाते हैं।

उत्पादन का अन्तरराष्ट्रीयकरण

नव–उपनिवेशिक चरण में, खासकर इसके नव–उदारवादी दौर में, साम्राज्यवादी ढांचे की बुनियाद मूलभूत रूप से रूपांतरित हो गई है। पूर्व में उत्पादन का जो केन्द्रीकृत और राष्ट्र–केन्द्रित स्वरूप था, इस चरण में वह आधार अपनी जगह से खिसक गया है और इसका पुनर्गठन किया गया है। उत्पादन एवं प्रसंस्करण, परिवहन, सूचना एवं संचार, आदि से संबंधित नई तकनीकियों का 1960 के दशक से जो विकास हुआ है, उसने इस रूपांतरण में भारी मदद की है। मिसाल के लिए उत्पादन एवं प्रसंस्करण की नई प्रौद्योगिकी के विकास और परिष्करण को लिया जा सकता है जो उत्पादन को अलग–अलग चरणों में बांटने में सक्षम है। इससे अन्तरराष्ट्रीय इजारेदारों और बहुराष्ट्रीय निगमों के लिए यह सम्भव हो सका है कि वे उत्पादन के अलग–अलग चरणों को दुनिया के ऐसे दूरदराज के स्थानों में ले जा सकें जहां अकुशल मजदूरों को आसानी से प्रशिक्षण देकर जटील कार्य करने के लिए तैयार किया जा सकता है। इसके चलते वित्तीय पूंजी के लिए उत्पादन का विकेन्द्रीकरण और काम को अन्तरराष्ट्रीय पैमाने पर 'आउटसोर्स' करना सम्भव हो सका है। इस प्रकार उद्योग लगाने का स्थान, उत्पादन कार्य और उस पर नियंत्रण जैसी चीजें भौगोलिक दूरी पर क्रमशः कम निर्भर होती गई हैं।

द्वितीय विश्व युद्ध के पहले उत्पादन का कथित ''फोर्डवादी'' तरीका प्रचलित था जिसमें सारा उत्पादन एक छत के नीचे केन्द्रीकृत कारखाना व्यवस्था के तहत होता था। इसके विपरीत, आज श्रम शक्ति के विकेन्द्रीकरण और विखण्डन ने इजारेदार पूंजीपतियों को एक नया तरीका अपनाने के लिए प्रेरित किया है जिसे ''उत्तर फोर्डवाद'' कहा जाता है। पूंजीवादी विद्वानों ने श्रमशक्ति के इस ''उत्तर–फोर्डवादी'' नियमन को ''लचकदार कार्य कुशलता'' भी नाम दिया है। इससे कारोबारी उपक्रम 'श्रम का एक नया अन्तरराष्ट्रीय विभाजन' कर विश्व स्तर पर मजदूरों की सामूहिक मोलभाव की क्षमता कमजोर करने और उनमें बिखराव लाने में सक्षम हुए हैं। इस दौरान उपभोक्ता वस्तुओं के व्यापक किस्मों की उपलब्धता, बाजार विविधीकरण, मुनाफे के स्वायत्त केन्द्र और नेटवर्क सिस्टम के साथ–साथ काम का आउटसोर्सिंग, मजदूर यूनियनों का विभाजन व श्रेणीकरण होता रहा। इस प्रक्रिया को उत्पादन के अन्तरराष्ट्रीयकरण के रूप में निरुपित किया गया।

साम्राज्यवादी देशों में अभूतपूर्व अनौद्योगीकरण तथा श्रम के नव–उदारवादी पलटनीकरण और नियमन की प्रक्रिया शुरू होने के साथ उत्पादन के अन्तरराष्ट्रीयकरण ने साम्राज्यवाद इसके लिए सक्षम बनाया कि वह नव–उपनिवेशिक देशों के उस सबसे सस्ते श्रम के स्रोत का अपने लिए उपयोग कर सके जो सबसे कम मजदूरी पर खुद को बेचने के लिए मजबूर थे। ऊपर से थोप दिये गये तमाम कारपोरेट–परस्त कानूनों के माध्यम से वैश्वीकृत उत्पादन की राह सुगम बनाई गई। नव–उपनिवेशिक देशों के शासकों द्वारा श्रम, पूंजी निवेश, मुनाफे को अपने देश ले जाने, टैक्स, व्यापार और पर्यावरण से संबंधित जो कानून बनाये गये उसने पूंजी संचय की परिस्थितियों को बदल दिया और इससे साम्राज्यवाद 1970 के दशक के अपने संकट से अस्थाई तौर पर उबरने में सक्षम हो सका।

अन्तरराष्ट्रीयकरण और इसके फलस्वरूप ''विकेन्द्रित उत्पादन'' के चलते एक उल्लेखनीय बदलाव यह आया कि द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात करीब पचीस वर्षों तक पूंजी निर्यात और वस्तु व्यापार के मामले में विश्व अर्थव्यवस्था का जो भूखण्ड केन्द्रित ढांचा था वह बदल गया। इस मामले में सबसे साफ नजर आने वाली प्रवृत्ति यह थी कि इस दौरान प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (FDI) के महत्वपूर्ण गन्तव्य स्थल के रूप में और दुनिय के अग्रणी व्यापारिक देश के रूप में अमेरिका की स्थिति में क्षरण हुआ और चीन का उभार हुआ।

''पूंजी निर्यात'' को गुत्थी

उत्पादन के अन्तरराष्ट्रीयकरण ने एक नये रूझान को जन्म दिया है। इसके तहत नव–उपनिवेशिक देशों की निजी और राजकीय क्षेत्र की कम्पनियां बहुराष्ट्रीय निगमों के साथ सीमा–पार गठजोड़ कर एवं संयुक्त उपक्रम स्थापित कर वैश्वीकृत उत्पादन की धारा में प्रवेश करना शुरू किया है। यह देखकर कुछेक वामपंथी विद्वान ताबड़तोड़ इस निश्कर्श पर पहुंच जाते हैं कि ये नव–उपनिवेशिक देश अब ''पूंजी के निर्यातक'' बन गये हैं और स्वतंत्र पूंजीवादी या ''नव साम्राज्यवादी'' देश में रूपांतरित हो गये हैं। ''पूंजी निर्यात'' से जुड़ी यह 'गुत्थी' केवल 'स्वरूप' के स्तर पर है, जबकि अन्तर्वस्तु उत्पादन संबंध होता है जो मूल्य दोहन की प्रक्रिया को निर्धारित करता है। आज बहुराष्ट्रीय निगमों द्वारा सस्ती मजदूरी वाले देशों में मजदूरों का शोषण और अतिरिक्त मूल्य का दोहन पूंजी के निर्यात के बिना भी किया जा सकता है। आज बहुराष्ट्रीय निगमों द्वारा स्वयं उन देशों के स्रोतों से ही फण्ड इकट्ठा किया जाता है जहां वे निवेश करती हैं। उत्पीड़ित देशों में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (FDI) आने और वहां से सम्पदा के दोहन (या मुनाफे की वापसी) के बीच कोई सीधा संबंध नहीं है। इसका पर्याप्त प्रमाण हाल में जारी किये गये प्रत्येक देश के अन्तरराष्ट्रीय आंकड़े को देखने पर मिलता है। साथ ही, जहां अमेरिका, यूरोपीय संघ, जापान आदि की बहुराष्ट्रीय निगमों द्वारा दक्षिण अमेरिका, अफ्रीका और एशिया के मजदूरों का शोषण किया जाता है, वहीं ऐसी कोई रिपोर्ट नहीं है जिससे पता चले कि ब्राजील, दक्षिण अफ्रीका या भारत के पूंजीपतियों की साम्राज्यवादी देशों के सर्वहारा वर्ग के शोषण और दोहन में भागीदारी हो। निश्चित ही, आश्रित देशों के दलाल शासक वर्ग नव–उपनिवेशिक उत्पीड़न के शिकार नहीं हैं और वे साम्राज्यवादी पूंजीपतियों के साथ मिलकर मुख्यतः अपने स्वयं के देश के मजदूरों और मेहनतकश जनता का शोषण कर मुनाफा अर्जित कर रहे हैं। यह सही है कि उत्पादन का अन्तरराष्ट्रीयकरण गुणात्मक रूप से नई प्रवृत्ति है, किन्तु पूंजी आज भी साम्राज्यवादी व्यवस्था के उस ऐतिहासिक ढांचे के अन्दर रह कर ही गतिशील है जो उत्पीड़क और उत्पीड़ितों के बीच विभाजन की रेखा खींचती है।

अतः उन लोगों को और ज्यादा स्पष्टीकरण देने की जरूरत है जो कथित ''बड़े इजारेदारों'' के उद्‌भव और बढ़ते ''पूंजी निर्यात'' के आधार पर ''नव–उपनिवेशिक रूप से आश्रित देशों'' को अब ''नव–साम्राज्यवादी देश'' के रूप में चित्रित करने लगे हैं। मगर यह कोई एकदम से नया रूझान नहीं है। यानी कि, एशिया, अफ्रीका और दक्षिण अमेरिका के कुछ देशों में बड़े पूंजीपतियों द्वारा अकूत सम्पदा का संचय और इसके फलस्वरूप इजारेदारियों का विकास कोई नई परिघटना नहीं है। साम्राज्यवाद के उपनिवेशिक चरण में भी यह प्रवृत्ति मौजूद थी। उदाहरण के लिए, टाटा, बिरला जैसे अग्रणी भारतीय इजारेदार घरानों द्वारा प्रथम और द्वितीय विश्व युद्ध के दरम्यान जो अकूत धन संचय किया गया था और उनकी सम्पदा जिस ऊंचाई पर पहुंची थी, वह निश्चित ही उन अन्तरराष्ट्रीय इजारेदारों के समकक्ष थी जो साम्राज्यवादी ब्रिटेन से आते थे। किन्तु आज जो साम्राज्यवादी शक्तियां हैं, वहां जिस तरह से पूंजीवाद का विकास हुआ था, उसके विपरीत भूतपूर्व उपनिवेशिक या अर्द्ध–उपनिवेशिक देशों के बड़े पूंजीपति अपने देश को सामान्य पूंजीवादी विकास की राह पर आगे ले जाने में अक्षम रहे हैं। यह आम तौर पर मान्य है कि साम्राज्यवादी देशों में इजारेदारियों का विकास किसी एक खास उद्योग में पूंजी और उत्पादन के सघनीकरण और संकेन्द्रण के कारण हुआ था जिसने ''पूंजी के जैविक घटक तत्व'' को अभूतपूर्व रूप से बढ़ा दिया था, जबकि आज नव–उपनिवेशिक देशों में बड़े पूंजीपतियों के हाथ में पूंजी का संकेन्द्रण उत्पादन के क्षेत्र में नहीं, बल्कि परिचालन की ओर लक्षित है।

नव–उपनिवेशिक प्रभुत्व के मातहत देशों के दलाल पूंजीपति वर्ग के जन्मजात ढांचागत कमजोरी के बावजूद, उत्पादन के अन्तरराष्ट्रीयकरण ने उन्हें राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की सरहदों को लांघकर बाहर निकलने और विश्व स्तर पर कार्य संचलान के लिए बहुराष्ट्रीय निगमों के साथ लाइसेन्स समझौता करने, संयुक्त उपक्रम स्थापित करने, विलय और अधिग्रहण करने के लिए नये अवसर प्रदान किये। वैश्वीकृत उत्पादन

और बाजार एकीकरण की प्रवृत्ति ने बहुराष्ट्रीय निगमों और नव–उपनिवेशिक देशों के दलाल पूंजीपतियों के हावी गुटों के बीच आपसी रिश्तों को प्रगाढ़ करने के नये रास्तों को खोल दिया। इसके अलावा, चूंकि साम्राज्यवादी देशों में शोषण, गैर–बराबरी और गरीबी बढ़ रही है, इसलिए यह आपसी रिश्ता और प्रगाढ़ होने वाला है। किन्तु अब तक वह परिस्थिति निर्मित नहीं हुई है जिससे नव–उपनिवेशिक देश साम्राज्यवाद में तब्दील हो सकें। बहुराष्ट्रीय निगमों और दलाल पूंजीपतियों के बीच नये–नये ताल्लुकात आंतरिक संचय के स्व–विस्तार और राष्ट्रीय विकास की राह में रोड़ा बने हुए हैं। यह साम्राज्यवादी स्वर्गों में सम्पदा के ज्यादा से ज्यादा पलायन को प्रोत्साहित करता है जिसके चलते देश के अन्दर विकृतियां पैदा होती हैं और ''अन्दर की ओर देखने वाली नीतियां'' अव्यवहारिक हो जाती हैं। साम्राज्यवाद द्वारा प्रशिक्षित तकनीकशाहों और दलाल शासनतंत्रों के बड़े नौकरशाहों के मामले में यह पहलू अत्यन्त प्रासंगिक है क्योंकि विश्व बैंक, अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF), विश्व व्यापार संगठन (WTO) एवं इस तरह की अन्य नव–उपनिवेशिक व नव–उदारवादी संस्थाओं के प्रति इनकी निष्ठा हमेशा ज्यादा होती है, बनिस्पत उन राष्ट्र राज्यों के प्रति जिनका ये प्रतिनिधित्व करते हैं। इसके अलावा, नव–उपनिवेशिक देशों के शासनतंत्रों का साम्राज्यवाद के प्रति सेवाभाव गरीब देशों के अन्तरराष्ट्रीय या आंचलिक खेमेबंदी को अप्रासंगिक बना देता है।

इस प्रकार, साम्राज्यवादी और नव–उपनिवेशिक देशों के शासक वर्गों के बीच कथित रिश्ता और इसके फलस्वरूप मजदूरों और उत्पीड़ित जनता की तेज होती लूट इनके के बीच फर्क को मिटाने के बजाय, असल में ऐतिहासिक खाई को चौड़ा कर रहा है। बेशक, संयुक्त राष्ट्र और इसका सुरक्षा परिषद, आई. एम.एफ. और विश्व बैंक की जोड़ी, विश्व व्यापार संगठन, विभिन्न सैन्य समझौते, आदि, आदि, जिन पर आज भी मुट्ठीभर साम्राज्यवादी शक्तियों का नियंत्रण है, अब भी पृथ्वी पर साम्राज्यवाद के वर्चस्व को कायम रखे हुए हैं।

मजदूर वर्ग का अति शोषण

उत्पादन के अन्तरराष्ट्रीयकरण के चलते उत्पादन के ''वैश्विक एसेम्बली लाइन'' को बड़े पैमाने पर एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाया गया जहां सस्ता श्रम उपलब्ध था। सस्ते श्रम पर 'निर्भर' इन स्थानों को आउटसोर्स और लचकदार कार्य कुशलता के जरिए ''निर्यात के मंच'' या ''निर्यातोन्मुखी उत्पादन केन्द्र'' के रूप में विकसित किया गया। इसकी वजह से स्वयं साम्राज्यवादी देशों में बेरोजगारी और अर्द्ध–बेरोजगारी में अभूतपूर्व वृद्धि हुई। इसके साथ–साथ, इक्कीसवीं सदी के कारपोरेटीकरण द्वारा थोपे गये विऔद्योगीकरण और विकिसानीकरण के कारण बड़े पैमाने पर विस्थापन और पलायन हुआ और शरणार्थियों का सीमा–पार आवागमन तेज हुआ, जिसके चलते आज दुनिया के सबसे ''अभागे'' तबके के रूप में असंगठित या अनौपचारिक मजदूरों की कतार में अभूतपूर्व वृद्धि हुई है। आज दुनिया में इनकी संख्या सौ करोड़ से ज्यादा तक पहुंच गई है। इसे श्रमशक्ति का ''अनौपचारिकीरण'' कहा जाता है (हालांकि ये सभी तरह के श्रम के काम करते हैं, किन्तु इन्हें औपचारिक रूप से श्रमिक का दर्जा नहीं दिया जाता है)। एक तरफ साम्राज्यवादी देशों में रोजगार के अवसरों का बड़े पैमाने पर खात्मा और दूसरी तरफ शेष बचे श्रमिकों की ''काम लो और निकाल दो'' (हायर एण्ड फायर) प्रथा और पार्ट–टाइम जॉब के तहत नियुक्ति (जिसे चिकनी–चुपड़ी भाषा में श्रमशक्ति का ''अस्थाईकरण'' कहा जाता है), यह अमेरिका एवं अन्य साम्राज्यवादी देशों में आम रूझान बन गया है। इस साम्राज्यवादी पुनर्गठन के वर्गीय सारतत्व पर पर्दा डालने के लिए उत्तर–आधुनिक सिद्धान्तकार इसे ''उत्तर–औद्योगिक'' परिघटना के रूप में चित्रित करते हैं।

उत्पादन के अन्तरराष्ट्रीयकरण या ''बहु–राष्ट्रीकरण'' की अभिव्यक्ति दुनिया की ऐसी जगहों पर उत्पादन के स्थानांतरण के रूप में हुई है जहां श्रम सस्ता है। इससे संबंधित सबसे महत्वपूर्ण बदलाव है श्रम का

अति–शोषण (दुनिया की औसत मजदूरी से कम मजदूरी पर काम लेने की प्रथा आम हो गई है) तथा साम्राज्यवादी देशों और नव–उपनिवेशिक देशों के बीच वेतन में अन्तरराष्ट्रीय खाई का चौड़ा होना। इसके परिणामस्वरूप सम्पदा का नव–उपनिवेशिक देशों से साम्राज्यवादी देशों की ओर बड़े पैमाने पर प्रवाह तेज हो गया है। इस संदर्भ में, आज के साम्राज्यवाद के बारे में मार्क्सवादी–लेनिनवादी सिद्धान्त का विकास करने के लिए, उन्नीसवीं और बीसवीं सदी के शुरूआती समय की उत्पादन प्रणाली पर आधारित पहले के इस शास्त्रीय मार्क्सवादी सूत्र को फिर जांचने की जरूरत है कि 'आश्रित' देशों से मूल्य दोहन 'गौण' महत्व था। बहुराष्ट्रीय निगमों के मुनाफे और दुनिया के अबरपतियों की सम्पदा में निरंतर होती वृद्धि तथा 'आश्रित' देशों के मजदूरों और जनता के वेतन और जीवनस्तर में तुलनात्मक रूप से आती गिरावट नव–उपनिवेशिक देशों के अति–शोषण की ठोस हकीकत का पर्याप्त प्रमाण है। आज बहुराष्ट्रीय निगमें विश्व स्तर पर वेतन देनदारी को कम करने और अपने मुनाफे को बढ़ाने की मुहिम में लगी हुई है और इसके लिए वे आज के साम्राज्यवाद की 'फूट डालकर राज करो' की नीति के हिस्से के रूप में मजदूरों के बीच विश्व स्तर पर प्रतिस्पर्द्धा तेज कर रही हैं। लेनिन ने ''साम्राज्यवाद के सारतत्व'' को ''उत्पीड़क और उत्पीड़ित राष्ट्रों के बीच विभाजन'' के रूप में चित्रित किया था। लेनिन के इस चरित्र चित्रण को समझने के लिए आज की ठोस परिस्थितियों के अनुरूप इस मुद्दे पर स्पष्ट दृष्टि का होना जरूरी है।

उत्पादन का अन्तरराष्ट्रीयकरण ''स्थानीय बाधाओं'' को दूर कर विश्व स्तर पर ''वेतन को एक समान बनाने'' की ओर नहीं ले जा रहा है, उल्टे दलाल शासकों के राज में ढेर सारे गैर–आर्थिक कारक मजदूरी को 'श्रम शक्ति के मूल्य' से काफी कम रखने के लिए इस कदर जोरशोर से काम कर रहे हैं कि आश्रित देशों में मजदूरी को कम से कम करते जाना आज पूंजी संचय और अतिरिक्त मूल्य दोहन का मुख्य स्वरूप बन गया है। साम्राज्यवादी देशों में नस्लवाद और बाहरी मुल्क के लोगों के प्रति जो घृणा फैलाई जा रही है उसका अर्थ यह नहीं है कि वे गरीब देशों से शरणार्थियों और मजदूरों के आने पर पूरी तरह रोक लगा चाहते हैं, बल्कि नव–फासीवादी और आप्रवास–विरोधी कानूनों का प्रभावी ढंग से इस्तेमाल यह सुनिश्चित करने के लिए किया जा रहा है कि आप्रवासी और शरणार्थी हमेशा भयभीत रहें और दूसरे दर्जे का नागरिक बने रहें, ताकि मजदूरी को और कम किया जा सके। उदाहरण के लिए, आउटसोर्स के लिए एक मुख्य आकर्षण पिछड़े देशों में काम के घण्टे ज्यादा होना है और बहुराष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा इसका इस्तेमाल नई तकनीकी पर निवेश के विकल्प के रूप में किया जाता है। साम्राज्यवाद के इस नव–उपनिवेशिक चरण में राष्ट्रीय उत्पीड़न का जो स्वरूप हावी है, वह है 'श्रम शक्ति के मूल्य' को कम मजदूरी वाले देशों में लादना। यह उत्पादन संबंध (पूंजी और श्रम के बीच संबंध) जहां एक तरफ साम्राज्यवादी देशों के मजदूरों का लूटता है, वहीं दूसरी तरफ यह नव–उपनिवेशिक देशों में नौजवानों और महिलाओं समेत मेहनतकश जनता के व्यापक हिस्सों को दरिद्रता की खाई में धकेलता है। साम्राज्यवाद से संबंधित अधिकांश विश्लेषणों में विश्व सम्पदा के वितरण के मामले में साम्राज्यवादी शक्तियों की आपसी दुश्मनी पर जोर दिया जाता है, जबकि इस वैश्वीकृत उत्पादन प्रक्रिया में मजदूरों के अति–शोषण से इजारेदार मुनाफा में जो वृद्धि हो रही है उसका वैज्ञानिक विश्लेषण कर मूल्य के मार्क्सवादी सिद्धान्त को विकसित करने की जरूरत पर ध्यान नहीं दिया जा रहा है, जिसकी आज सबसे ज्यादा जरूरत है। कहने का अर्थ है कि, मुनाफे का परम स्रोत वैश्वीकृत उत्पादन मे निहित है, साम्राज्यवाद के आपसी अन्तर्विरोध के रूप में अभिव्यक्त होने वाले इसके वितरण में नहीं।

राज्य की नव–उदारवादी भूमिका

निजीकरण और उदारीकरण जैसे लुभावने शब्दों के साथ–साथ पूंजी के अन्तरराष्ट्रीयकरण से ऐसे प्रज्ञावान भी पैदा हो गये हैं जो ''अराजकीय पूंजीवाद'', ''पार–राष्ट्रीय पूंजीवाद'', आदि भविष्यवाणी करने लगे हैं। निश्चित ही, आज की परिस्थिति उस समय से भिन्न है जब लेनिन ने ''राजकीय पूंजीवाद'' की अवधारणा को सामने रखा था। उन्होंने इसे वित्तीय पूंजी और राज्य के विलय के रूप में परिभाषित किया था।

साम्राज्यवादी दुनिया में अन्तरराष्ट्रीय कीन्सवाद के तहत अर्थव्यवस्था के नियोजन और प्रोग्रामिंग, सार्वजनिक क्षेत्र के विकास, ''सैन्य–औद्योगिक गठजोड़'' के उद्‌भव आदि के जरिए यह प्रक्रिया मजबूत हुई थी और यह 1970 के दशक में ''ठहरास्फीति'' का संकट पैदा होने तक जारी रही।

किन्तु 1970 के बाद राज्य की नव–रूढ़ीवादी, नव–उदारवादी परिभाषा की जाने लगी जिसके तहत तब तक ''राज्य के नेतृत्व में विकास'' की जो बात की जाती थी उसे उलट दिया गया और बहुराष्ट्रीय निगमों एवं वित्तीय थैलीशाहों को बेलगाम आजादी दी जाने लगी। तब से सामाजिक व आर्थिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को अन्तरराष्ट्रीय पूंजी प्रवाह के अनुशासन से बांध दिया गया। बड़े उद्यमों के बीच वैश्विक विलय और अधिग्रहण ने उन्हें और भी बड़ा उपक्रम बनने में सक्षम बनाया है, जबकि निजीकरण और इसके फलस्वरूप राज्य के ''पीछे हटने और उसकी भूमिका में कटौती'' ने विद्वानों को ''राज्य–विहीन पूंजीवादी'' को सच मान लिया जो तथ्यगत रूप से सही नहीं है। बेशक, व्यवस्था द्वारा जनता को दिये गये जख्मों की जिम्मेदारी लेने से बचने के लिए शासक वर्गों के हाथ में निजीकरण एक कारगर वैचारिक हथियार रहा है जिसकी आड़ में वे हर चीज का दोष बाजार की अमूर्त ताकतों पर थोप देते हैं। किन्तु नव–उदारवादी राजसत्ता जहां एक ओर सामाजिक खर्चों में कटौती कर रही है तथा श्रम, टैक्स, पर्यावरण आदि से संबंधित सभी पूर्ववर्ती कानूनों को खत्म कर रही है, और अपने कल्याणकारी मुखौटे को पूरी तरह उतार फेंका हैं, वहीं दूसरी ओर यह सभी जगहों पर मजदूरों और जनता पर वित्तीय पूंजी के जुल्मों में सक्रिय भूमिका निभा रही है। दमनकारी श्रम कानूनों को लागू करने तथा कारपोरेट–परस्त टैक्स प्रणाली और पर्यावरण संबंधी नियम बनाने के लिए वित्तीय पूंजी हमेशा की तरह आज भी राजसत्ता पर उतनी ही निर्भर है। इसलिए यह दुहराने की जरूरत है कि ''राज्योपरी पूंजीवाद'' अन्तरराष्ट्रीय और देशीय तौर पर एक मिथ्या नामांकरण है।

यह तर्क और भी ज्यादा संदेहास्पद है कि आज साम्राज्यवाद ''पार–राष्ट्रीय'' (ट्रान्स–नेशनल या राष्ट्र की सरहदों से ऊपर) हो गया है, क्योंकि अपने जन्मकाल से पूंजी में 'राष्ट्रीय चरित्र' निहित है। ''पार–राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग'' की अवधारणा पूर्णतः परिकल्पना है। मिसाल के लिए, उत्पादन के अन्तरराष्ट्रीयकरण के कई दशकों के बाद भी, दुनिया की अग्रणी विनिर्माता कम्पनियां अपने कथित ''गृह देश'' से शाखाओं का विस्तार करती हैं। यानी कि, बहुराष्ट्रीय निगमों के शेयरों का अधिकांश मालिकाना अब भी उनके गृह देशों के अन्दर होता है। अमेरिका, जर्मन, ब्रिटेन, फ्रान्स, जापान और चीन के ज्यादातर उपक्रम मुख्यतः राष्ट्रीय मालिकाना वाले हैं और उनकी ज्यादातर परिसम्पत्ति एक देश में केन्द्रित है। हाल के आंकड़ों के मुताबिक, दुनिया की 200 सबसे बड़ी बहुराष्ट्रीय निगमों में से 96 प्रतिशत का मुख्यालय केवल आठ देशों में स्थित है, ये इन आठ देशों की निगमित कम्पनियों के रूप में कानूनी तौर पर पंजीकृत हैं और इनके निदेशक मण्डलों (बोर्ड ऑफ डायरेक्टर) की बैठक इन्हीं आठ देशों में होती है। इनके दो प्रतिशत से भी कम बोर्ड सदस्य किसी दूसरे देश के हैं। यानी कि, बहुराष्ट्रीय निगमों की ''दुनिया भर में पहुंच'' के बावजूद, इनकी सम्पदा और मालिकाने का साफ तौर पर 'राष्ट्रीय आधार' है।

समुचित बहुपक्षीय निवेश के लिए, व्यापारिक एवं मौद्रिक संस्थाओं के लिए तथा व्यापार एवं वाणिज्य के व्यवस्थित नियमन का इंतजाम करने के लिए, आश्रित देशों पर ''निवेशक मित्र'' वातावरण बनाने तथा ''कारोबार करने की सहजता'' सुनिश्चित करने हेतु दबाव डालने के लिए, अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा एवं पूंजी बाजार में उतार–चढ़ाव से बचने के लिए, संकट के समय उन्हें राहत पहुंचाने के लिए, और सबसे बढ़कर प्रतिपक्षी या ''प्रतिद्वन्द्वी'' या अवज्ञाकारी हठी तत्वों के खिलाफ अंतिम उपाय के रूप में सैन्य बल का प्रयोग करने के लिए ये बहुराष्ट्रीय निगमें अपने गृह देशों पर दृढ़ता से भरोसा करती हैं। अतः संकटग्रस्त साम्राज्यवाद राजसत्ता के बगैर जिन्दा नहीं रह सकता है और संकट का खतरा जितना ज्यादा होगा, राजसत्ता की जरूरत उतनी ही ज्यादा होगी। ऐतिहासिक रूप से, ''औद्योगिक पूंजी'' की अपेक्षा ''सट्टा पूंजी'' का राजसत्ता के साथ जुड़ाव कम मजबूत रहा है। किन्तु, 1987 के वित्तीय संकट तथा बीसवीं सदी

के अंतिम दशक में मन्दी के आगमन की आहट ने साम्राज्यवादी देशों के लिए इसकी जरूरत को भी मजबूती से सामने ला दिया। इसका सबसे ताजा उदाहरण यह है कि वर्ष 2007–08 की ''विश्वव्यापी आर्थिक मन्दी'' के पश्चात दुनिया भर में कारपोरेट पूंजीपतियों को खरबों डालर का ''राहत पैकेज'' और ''जान फूंकने के लिए पैकेज'' दिया गया। किसी संकट के प्रति वित्तीय पूंजीपति की फौरी प्रतिक्रिया यह होती है कि वे अपने साम्राज्यवादी देशों की अपेक्षाकृत सुरक्षा की ओर वापस दौड़ लगाने लगते हैं। यहां यह कहना पर्याप्त हैं कि सच्ची अन्तरराष्ट्रीयता और ''राज्यविहीन समाज'' का पौधा समाजवाद में रोपा जा सकता है, पूंजीवाद में नहीं।

बहरहाल, उपनिवेशिक चरण में साम्राज्यवाद शक्तियों के आपसी प्रतिद्वन्द्विता के बारे में आम तौर पर स्वीकृत मार्क्सवादी मॉडल, जो आज भी पूंजी संचय में एक घटक के रूप में काम करता है, आज उत्पादन के अन्तरराष्ट्रीयकरण के युद्धोत्तर नव–उपनिवेशिक संदर्भ में गुणात्मक रूप से भिन्न है। हालांकि संरक्षणवादी प्रवृत्तियां आज भी मजबूत हैं, किन्तु वस्तु एवं वित्त बाजार के भूमण्डलीकरण से पैदा हुई बाध्यताओं के कारण साम्राज्यवाद ऐसी प्रतिद्वन्द्विता के विभिन्न आयामों को एक दायरे में सीमित रखना चाहता है जिससे ''अपने पड़ोसी को भिखारी बना दो'' की नीतियों, व्यापारिक युद्धों, मौद्रिक एवं सैन्य लड़ाइयों, आदि को दुहराने से बचा जा सके, जो दो विश्व युद्ध के बीच के समय की याद दिलाते हैं। शीत युद्ध के बाद के नव–उदारवादी दौर में, इराक और पश्चिम एशिया में हमलों एवं अन्य आंचलिक हस्तक्षेपों के बावजूद, यह परिस्थिति कमोबेश वैसे ही बने हुई है। पूंजी का सीमा के आरपार मुक्त आवागमन, निवेश की स्थिरता, उदारवादी व्यापारिक नीतियां आदि, जो पूंजी के अन्तरराष्ट्रीयकरण की आवश्यक पूर्व–शर्त हैं, इस बात के लिए प्रेरित करती हैं कि वे साम्राज्यवादी देशों के बीच खुली सैन्य लड़ाई को स्थगित रखने का प्रयास करें। तथापि, साम्राज्यवाद अपने आक्रमणों और जंगखोर चरित्र पर केवल अस्थाई रूप से ही पर्दा डाल सकता है। किसी खास परिस्थिति में साम्राज्यवादियों के बीच सहयोग होगा या टकराव, यह अन्तरराष्ट्रीय वर्ग संघर्ष के विकास के साथ अभिन्न रूप से जुड़ा है। बेशक, इस बुनियादी लेनिनवादी प्रस्थाना के प्रति अज्ञानता और ''शन्तिपूर्ण साम्राज्यवाद'' की बात अनिवार्य रूप से ''पार–राष्ट्रीयता'', ''चरम–साम्राज्यवाद'', ''पार–राष्ट्रीय पूंजीवाद'', आदि गलत सिद्धान्तों की ओर ले जायेगी।

वित्त पूंजी का अन्तरराष्ट्रीयकरण या ''वित्तीयकरण''

बहरहाल, 1970 के दशक में 'ठहरास्फीति' के संकट आने, कीन्सवाद के ढह जाने और सट्टा पूंजी को बेलगाम छोड़ देने के बाद से, वित्त का अन्तरराष्ट्रीयकरण या वित्तीयकरण की प्रक्रिया उत्पादन के अन्तरराष्ट्रीयकरण की अपेक्षा कहीं तेज गति से आगे बढ़ी है। असल में, उत्पादन में ठहराव और साम्राज्यवादी देशों में 'मुनाफादायक' निवेश के अवसरों की कमी के परिणामस्वरूप, वित्तीय पूंजी ने उस समय ही सट्टेबाजी के क्षेत्र में तेजी से प्रवेश करना शुरू कर दिया था जब कीन्सवादी नीतियां प्रचलन में बनी हुई थीं। बहुराष्ट्रीय निगमों और वैश्विक वित्तीय थैलीशाहों के पास भारी मात्रा में मुद्रा पूंजी संचित हो गई थी, खासकर उनके पास जिनकी जड़ें अमेरिका और यूरोपीय संघ में थी और जिसमें अमेरिकी पार–राष्ट्रीय बैंकों और यूरोपीय बैंकों में विशाल मात्रा में जमा यूरो–डालर और पेट्रो–डालर भी शामिल था। इसे इस प्रकार निवेश करने की जरूरत थी जो सबसे ज्यादा मुनाफा दे। चूंकि उत्पादक क्षेत्र ठहराव का शिकार हो रहा था और उसमें मुनाफे की दर घट रही थी, इसलिए दूसरा विकल्प था वित्तीय सट्टेबाजी के नये रास्तों को तैयार करना। नव–उपनिवेशिक देशों के सस्ते श्रम आधारित ''निर्यातोन्मुखी औद्योगिक क्षेत्रों'' की ओर प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (FDI) बड़े पैमाने पर प्रवाह इस समस्या के समाधान का एक हिस्सा था। वर्ष 1974 में ही अमेरिका ने पूंजी के अन्तरराष्ट्रीय आवागमन पर सभी प्रतिबंधों को समाप्त कर दिया था, जबकि यूरोपीय संघ में बर्लिन की दीवार ढहने और सोवियत संघ के पतन के बाद पूंजी पर नियंत्रण हटा लिया गया। इसके साथ–साथ, वित्तीय संस्थाओं एवं सेवाओं का एक बहुआयामी संजाल (नेटवर्क) तैयार किया गया तथा भौंचक कर देने वाली तरह–तरह की वित्तीय परिसम्पदाओं, ''डेरिवेटिव'' जैसी

जटील प्रक्रियाओं और लेनदेन के तरीकों की खोज की गई। सट्टेबाजी पर आभासी तौर पर लगाम लगाने वाली कीन्सवादी नीतियों के तहत वित्तीय पूंजी के विस्तार को कमोबेश उत्पादन और रोजगार के साथ कदम मिलाकर चलने चलने दिया जाता था, या कहें कि सट्टेबाजी उत्पादक अर्थव्यवस्था से पोषण पाती थी। किन्तु नव–उदार भूमण्डलीकरण के तहत ''वित्त'' और ''वास्तविक'' अर्थव्यवस्था के बीच एक स्पष्ट विरोधाभास सामने आया। इस दौर में वित्तीय पूंजी ने बेलगाम सट्टेबाजी के जरिए आत्म–विस्तार करने के लिए खुद को तैयार करना शुरू किया। साम्राज्यवाद के पिछले इतिहास के विपरीत, आज वैश्विक सट्टेबाजी का बुलबुला जिस अर्थव्यवस्था पर फूल–फल रहा है वह ठहराव का शिकार है। ठीक–ठीक कहें तो वित्त का अन्तरराष्ट्रीयकरण या वित्तीयकरण जो आज के साम्राज्यवाद की चालिका शक्ति है, पूंजीवादी माल उत्पादन के आधार को ही क्षतिग्रस्त कर रही है।

बीसवीं सदी के आरम्भ में, हालांकि वित्तीय पूंजी अपने शुरूआती चरम में थी, फिर लेनिन ने अपनी दूरदृष्टि से इसके विनाशकारी चरित्र को देख लिया था। आज के साम्राज्यवादी दौर में, लेनिन द्वारा चिन्हित वित्तीय पूंजी का यह प्रतिगामी सारतत्व वित्तीयकरण के जरिए एक गुणात्मक छलांग लगा चुका है और भयावह रूप से विनाशाकारी बन चुका है। आज अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर वित्तीय लेनदेन का एक बड़ा हिस्सा किसी किस्म के उत्पादक कार्य में नहीं लगता है, बल्कि विशुद्ध रूप से इस हद तक वित्तीय सट्टेबाजी के काम आता है कि उत्पादन की तुलना ''सट्टेबाजी भंवर में एक बुलबुले'' से की जा सकती है। अमेरिका को एक उदाहरण के रूप में ले सकते हैं। वहां सन् 1970 में वित्तीय लेनदेन का डालर में मूल्य सकल घरेलू उत्पाद (GDP) का दुगने से ज्यादा था, जो सन् 1980 के दशक में पांच गुना से ज्यादा और सन् 2000 में पचास गुना से ज्यादा हो गया। इक्कसीवीं सदी के आते–आते, जब वित्तीय सट्टेबाजी के बांध का जलद्वार खुलना शुरू हुआ था, तो अमेरिका में वित्तीय लेनदेन का कुल वार्षिक मूल्य 500 ट्रिलियन (खरब) डालर की ऊंचाई तक पहुंच गया था, जबकि इसका सकल घरेलू उत्पाद मात्र 10 ट्रिलियन डालर ही था। इक्कीसवीं सदी की ''वैश्विक आर्थिक मन्दी'' (जिसकी शुरूआत सन् 2007–08 में अमेरिका में कथित ''छोटे कर्जों के संकट'' के हुई थी और जिसके बाद यूरोप के देशों में ''सरकारी कर्ज का संकट'' और चीन में मन्दी आयी थी) के ठीक साल भर पहले, सन् 2006 में अकेले अन्तरराष्ट्रीय ''डेरिवेटिव'' व्यापार का मूल्य 1200 ट्रिलियन डालर तक पहुंच गया था, जबकि उस समय अमेरिका का सकल घरेलू उत्पाद (GDP) केवल 12.456 ट्रिलियन डालर (यानी कि, उसका एक बट्टे सौवां भाग) ही था। अन्य देशों में भी यही रूझान देखा गया। सट्टा वित्तीय पूंजी, जिसका मुख्य स्वरूप सीमा के आरपार ''गरम मुद्रा का प्रवाह'' है, उसके हितों को बनाये रखना ही दलाल शासनतंत्रों की चिन्ता का मुख्य विषय बन गया। वे अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा कोष, बहुपक्षीय निवेश गारंटी एजेन्सी, डब्ल्यू.टी.ओ. के तहत व्यापार संबंधित निवेश उपाय (TRIMs) के प्रावधान, आदि निर्देश पर यह कर रहे थे। इस प्रकार, वित्त के अन्तरराष्ट्रीयकरण ने न केवल दलाल शासनतंत्रों के चाल चलने की क्षमता को कम किया है, बल्कि इसने पलक झपकते ही 'राष्ट्रीय' सरहदों के पार चले जाने वाली ''गरम मुद्रा के प्रवाह'' से जन्म लेन वाले उथल–पुथल और अस्थिरता के सामने देश को बेबस छोड़ दिया है।

ऐसे एक परिदृश्य में, जहां मुनाफा संचय की चालिका शक्ति उत्पादन के बजाय वित्तीय सट्टेबाजी हो गई है, दुनिया में एक विडम्बनापूर्ण स्थिति निर्मित हो रही है, जहां दुनिया की अर्थव्यवस्था तो मन्दी से जुझ रही है, मगर कारपोरेट अरबपतियों के पास सम्पदा का केन्द्रीकरण हो रहा है। बेशक, एक तरफ वित्तीय थैलीशाहों द्वारा पूंजी का यह संचय और दूसरी तरफ दुनिया में बेहिसाब बढ़ती असमानता, जिसका पूंजीवाद के सम्पूर्ण इतिहास में कोई दूसरा मिसाल नहीं है, इन दोनों चीजों की जड़, मार्क्सवादी विश्लेषण के मुताबिक, जीवित श्रम से अतिरिक्त मूल्य के दोहन में निहित है। लेकिन एक ऐसी परिस्थिति में जब, वैश्विक आंकड़ों के अनुसार, रोजगार कम हो रहा है और जनता द्वारा उपभोग घट रहा है, तो अतिरिक्त मूल्य के दोहन में दरार आना अपरिहार्य है। वित्तीयकरण या ''कारपोरेटीकरण'' के तहत इस खास संकट

को साम्राज्यवाद के युद्धोत्तर नव–उपनिवेशिक चरण में वित्तीय पूंजी में आये रूपांतरण के साथ जोड़कर देखा जाना चाहिए। नव–उपनिवेशिक लूट के आरम्भिक वर्षों में, वित्तीय पूंजी मुख्यतः उद्योगों को कर्ज देकर, वाणिज्यिक बैंकिंग गतिविधियों के जरिए और गृह ऋण देकर मुनाफा कमाया करती थी। इस अर्थ में, पूंजी द्वारा मजदूरों से अतिरिक्त मूल्य के दोहन और वित्तीय पूंजी द्वारा इस अतिरिक्त मूल्य के एक बड़े हिस्से पर कब्जे के बीच काफी हद तक सीधा संबंध था। किन्तु पूंजीवाद में निहित अन्तर्विरोध के कारण वित्त और उद्योग का यह कथित ''मेलमिलाप'' और सम्पदा का संचय 1970 के दशक में ''ठहरास्फीति'' का संकट पैदा होने के बाद व्यवहारिक नहीं रह गया। इस नये संकट और मुनाफे में गिरावट का सामना होने पर, जैसा कि पहले कहा गया है, नव–उपनिवेशिक नीतियों को कीन्सवाद से नव–उदारवाद की ओर मोड़कर, साम्राज्यवाद ने उत्पादन और वितरण दोनों क्षेत्रों का इस तरह से पुनर्गठन किया और नये ढांचे में ढाला कि सम्पदा का संचय मूल्य के उत्पादन से क्रमशः अलग होता गया। इसका परिणाम एक तरफ तो वित्तीयकरण के रूप में और दूसरी तरफ विऔद्योगिकीरण, आउटसोर्सिंग, अनियमितीकरण, ''रोजगारहीन विकास'' (एक स्थाई परिघटना के रूप में बड़े पैमाने पर बेरोजगारी और अर्द्ध–बेरोजगारी), आदि के रूप में सामने आया। इसके चलते, एक ही प्रक्रिया के दो पहलू के रूप में, जहां मुनाफा छलांग लगाकर बढ़ा, वहीं मजदूरों की वास्तविक आय कम होते गई।

स्वाभाविक रूप से, वित्तीयकरण के जरिए अतिरिक्त मूल्य के दोहन की एक निश्चित सीमा है। चूंकि कई सारी जटील वित्तीय प्रक्रियाओं के जरिए मजदूरों और मेहनतकश जनता से अतिरिक्त मूल्य का ज्यादा से ज्यादा दोहन किया जाता है, इसलिए व्यापक जनता की क्रय क्षमता कम हो जाती है, जिसके कारण कथित ''रिकवरी का संकट'' पैदा होता है। आखिरकार, वित्तीय सट्टेबाजी से मुनाफा अतिरिक्त मूल्य पर दावेदारी ही है जिसका दोहन मजदूर वर्ग से किया जाता है। यानी कि, हालांकि वित्तीय पूंजी द्वारा अतिरिक्त मूल्य का हरण आभासी तौर पर वित्त बाजार और सट्टेबाजी के क्षेत्र में होता है, तथापि यह अन्ततः उत्पादन के क्षेत्र में होने वाले अतिरिक्त मूल्य के दोहन के साथ जुड़ा है, जो पिछड़ता जा रहा है। कहने का मतलब यह है कि संकट की जड़ को उत्पादन संबंधों में खोजना चाहिए, बनिस्पत इसके कि इसे वित्त के परिक्षेत्र में सीमित कर दिया जाये। ज्यादा साफ तौर पर कहें तो, इसके तथ्य के बावजूद कि आज दुनिया के अग्रणी पूंजीपतियों के पास दुनिया की सम्पदा का इतना बड़ा हिस्सा है जितना इतिहास में कभी नहीं रहा है, किन्तु उत्पादक कार्यों में इसके जितने कम हिस्से का निवेश किया जाता है उतना कम कभी नहीं किया गया है। यह गैर–बराबरी को बढ़ा रहा है और जन समुदायों की क्रय शक्ति को घटा रहा है, जिसके कारण पूंजी द्वारा ''वसूली का संकट'' तीव्र हो रहा है। जहां परजीवी वित्तीय थैलीशाहों और शासक वर्गों द्वारा पूरी तरह अनुत्पादक और दिखावटी उपभोग छलांग मारकर बढ़ रहा है, वहीं सभी देशों में व्यापक जन समुदायों की क्रय शक्ति और उपभोग का स्तर नीचे जा रहा है। विश्व स्तर पर, इन सबके कारण सम्पदा और आय का नव–उपनिवेशिक देशों से साम्राज्यवादी देशों की ओर तथा मजदूरों और उत्पीड़ित जनता से कारपोरेट उत्पीड़कों की प्रवाह हो रहा है।

इस संदर्भ में एक गौर करने लायक प्रवृत्ति है साम्राज्यवादी इजारेदारों के जुनियर पार्टनर के रूप में आचरण करने वाले आश्रित देशों के दलाल पूंजीपतियों द्वारा वित्तीय सम्पदा का भारी संचय। पूंजी के अन्तरराष्ट्रीयकरण ने इस तबके को, जिन्हें पैसा कातने वाले वित्त, शेयर और रीयल इस्टेट की सट्टेबाजी में महारत हासिल है, दुनिया के वित्तीय और मौद्रिक प्रवाह की धमनियों में प्रवेश करने में सक्षम बनाया है। ये वहां अपनी वित्तीय सम्पदा को लेकर जा रहे हैं और खुद को साम्राज्यवादी वित्तीय एवं निवेश केन्द्रों में समाहित कर रहे हैं। आज साम्राज्यवाद इस वित्तीय एकीकरण को सूक्ष्म या स्थानीय स्तर पर तक ले जाने में सक्षम है। यह काम माइक्रो–फाइनेन्स के सामाजिक नेटवर्क के जरिए ''वैश्विक'' को ''स्थानीय'' के साथ जोड़कर ''वित्तीय समावेशन'' के माध्यम से किया जा रहा है। इसने नव–उपनिवेशिक देशों के आर्थिक व राजनीतिक ढांचे को और कमजोर करने में मदद की है, जैसा कि ब्राजील, सउदी अरब, भारत,

दक्षिण कोरिया जैसे देशों के शासनतंत्रों के प्रयासों में दिखता है जो आई.एम.एफ., विश्व बैंक, विश्व व्यापार संगठन, आदि के निर्देश पर वैश्विक वित्तीय पूंजी के सट्टेबाज स्वार्थों को स्थान दे रहे हैं।

डिजिटलीकरण

बीसवीं सदी के आरम्भ में डिजिटल प्रवाह का वस्तुतः अस्तित्व ही नहीं था, जो आज दुनिया को घनिष्ठता से जोड़ने का काम कर रही है। आज आर्थिक विकास में डिजिटल माध्यम का प्रभाव उतना ही है जिनता सदियों पहले होने वाले वस्तु व्यापार का था और आज नौ–परिवहन मार्ग की अपेक्षा ब्राडबैण्ड कनेक्शन कहीं ज्यादा महत्वपूर्ण हो गया है। विगत दस वर्षों के दौरान, सीमा के आरपार इस्तेमाल होने वाले बैंडविड्थ की मात्रा में पचास गुना वृद्धि हुई है। वर्ष 2006 में प्रति सेकन्ड 4000 गीगा बाइट बैंडविड्थ का इस्तेमाल होता था, जो वर्ष 2016 में बढ़कर 220000 गीगा बाइट प्रति सेकन्ड हो गई है और यह आकलन किया गया है कि वर्ष 2020 तक इसमें और भी आठ गुना तक वृद्धि होगी। एक आकलन के अनुसार, अमेरिका में तीन–चौथाई, यूरोपीय संघ के देशों में दो–तिहाई और एशिया में एक–तिहाई आबादी तक इंटरनेट की पहुंच है, जबकि सब–सहारा अफ्रीकी देशों में ''डिजिटल खाई'' सबसे ज्यादा है (डिजिटल खाई का अर्थ है ऐसे लोग जिनकी इंटरनेट तक पहुंच है और जिनकी नहीं है, उनके बीच खाई)। यह वैश्विक असमानता को ही प्रदर्शित कर रही है। डिजिटल माध्यम से सूचना प्रवाह, सर्च, संचार, मल्टी–मीडिया, तस्वीर, वीडियो लेनदेन, ई–कामर्स, कम्पनी के अन्दर संवाद, डाटा, लेख, आदि लगातार बढ़ रहा है। सूचनाओं और विचारों का अपने आपमें मूल्यवान आदान–प्रदान करने के अलावा, डाटा प्रवाह ने वस्तुओं, सेवाओं, वित्त और लोगों के आवागमन को भी सुगम बनाया है। आज सीमा के आरपार होने वाले करीब–करीब सभी किस्म के लेनदेन में एक डिजिटल छाप होती है। पूंजीवादी विशेषज्ञों के अनुसार, अगर दुनिया सीमा के आरपार प्रवाह के बगैर होती तो जिनता आर्थिक विकास हुआ होता, उसकी अपेक्षा विगत एक दशक के दौरान सभी किस्म के डिजिटल प्रवाह ने दुनिया के आर्थिक विकास को 10.1 प्रतिशत बढ़ा दिया है (जो 2014 में 7.8 ट्रिलियन डालर के बराबर था)।

निश्चित ही, आज के साम्राज्यवाद और बीसवीं सदी के साम्राज्यवाद के बीच फर्क करने के लिए ''डिजिटलीकरण'' और ''सूचना प्रवाह'' द्वारा निभाई गई भूमिका को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, सूचना एवं संचार तकनीकी (ICT) के उद्भव और इसके विकास ने 1960 के दशक से पूंजी के अन्तरराष्ट्रीयकरण में (उत्पादन एवं वितरण दोनों क्षेत्रों में) उत्प्रेरक का काम किया है। मौद्रिक एवं वित्तीय लेनदेन के मामले में महत्वपूर्ण और सबसे ज्यादा सघन रूप में उपस्थिति दर्ज करने वाले डिजिटल प्रवाह ने इक्कीसवीं सदी में वित्तीय पूंजी की वैश्विक गतिविधियों के संचालन को एक गुणात्मक आयाम प्रदान किया है और डिजिटलीकरण के क्षेत्र में भी साम्राज्यवादी देशों की बहुराष्ट्रीय निगमों का प्रभुत्व एकदम साफ नजर आता है। इस डिजिटलीकरण को देखकर कुछ विश्लेषकों द्वारा कहा जा रहा है कि ''उद्योग आधारित'' दुनिया ''सूचना आधारित'' और ''ज्ञान आधारित'' दुनिया में बदल गई है। कुछ लोगों ने तो और भी आगे बढ़कर उन्नीसवीं सदी के ''मुक्त व्यापार पूंजीवाद'' और बीसवीं सदी के ''कारपोरेट पूंजीवाद'' की तुलना में इक्कीसवीं सदी के पूंजीवाद को ''सूचना पूंजीवाद'' कह डाला है। बहरहाल, आज के साम्राज्यवाद की ''सूचना साम्राज्यवाद'' के रूप में व्याख्या अतिशयोक्तिपूर्ण होगा, क्योंकि इस प्रकार का सूत्रीकरण उत्पादन प्रक्रिया, पूंजी संचालन, कमोडिटी व्यापार और सैन्य आक्रमणों के केन्द्रीय महत्व को नकार देना होगा। यह सही है कि डिजिटल प्रवाह आज के साम्राज्यवाद के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है, किन्तु यह भी वित्तीय पूंजी के (विभिन्न देशों के बीच और देश के अन्दर वर्ग संबंधों के) अधीन है। साथ ही, जिनके पास इंटरनेट तक पहुंच नहीं है, उन्हें अकुशल बनाकर ''डिजिटल खाई'' सभी स्तरों पर गैर–बराबरी को बढ़ा रही है। मुट्ठीभर साम्राज्यवादी देशों और शेष दुनिया के बीच विशाल ''डिजिटल खाई'' स्पष्ट नजर आती है।

पर्यावरण की त्रासदी

प्रकृति की लूट और पर्यावरण के विनाश ने, जिसे पूंजीवादी संचय की प्रक्रिया से अलग नहीं किया जा सकता है, आज के साम्राज्यवाद के दौर में वैश्विक पर्यावरण की त्रासदी का रूप धारण कर लिया है। एंगेल्स ने अपनी किताब ''प्रकृति में द्वन्द्व'' में यह चिन्हित किया था कि उपनिवेशीकरण की प्रक्रिया में पूंजी के 'आदिम संचय' ने किस प्रकार पारिस्थितिकी संतुलन और पर्यावरण की नाजुकता या संवेदनशीलता की जरा भी परवाह किये बिना कारखाना बनाने, बागान लगाने और खदान खोदने के क्रम में दुनिया के पर्यावरण को अपूरणीय क्षति पहुंचाई है। खैर, द्वितीय विश्व युद्ध के बाद की अवधि में, तकनीकी प्रगति का इस्तेमाल कर वित्तीय पूंजी ने जनता और प्रकृति का शोषण तेज कर दिया है जिससे दुनिया के पारिस्थितिकी तंत्र पर दबाव अभूतपूर्व रूप से बढ़ गया है। बाजार के विश्वव्यापी विस्तार और जीवनशैली में बदलाव तथा मुट्ठीभर अमीरों द्वारा अनाप–शनाप उपभोग ने ''वैश्विक गरमाहट'' को बढ़ाने में सीधा योगदान किया है, जिसके कारण मौसम को मौजूदा ढांचा बदल रहा है। नतीजे में विश्व स्तर पर खाद्यान्नों की कमी, जनता का बड़े पैमाने पर विस्थापन, पेयजल की कमी, आदि पैदा होगी जो आज की असमानता की खाई को और भी चौड़ा करेगी। **इस संदर्भ में, भाकपा(माले) रेड स्टार ने अपने पार्टी कार्यक्रम में साम्राज्यवादी व्यवस्था के एक प्रमुख अन्तर्विरोध के रूप में ''पूंजी और प्रकृति के बीच अन्तर्विरोध'' को शामिल किया है।** आज चूंकि नीतिगत निर्णयों में पर्यावरण का सवाल केन्द्रीय भूमिका में आ गया है और चूंकि दुनिया की जनता में पर्यावरण के प्रति जागरूकता लगातार बढ़ रही है, इसलिए कई सारी संस्थाओं की गतिविधियों में अचानक तेजी आ गई है, जिसमें पर्यावरण के सवाल पर विशेषज्ञता रखने वाले अन्तरराष्ट्रीय एन.जी.ओ. भी शामिल हैं। लेकिन इनमें से अधिकांश इस समस्या के पीछे वित्तीय पूंजी के नव–उपनिवेशिक हितों के बारे में मौन रहते हैं। इस प्रकार, पारिस्थितिकी तंत्र और पर्यावरण के पूरे मुद्दे को, जो साम्राज्यवादी भूमण्डलीकरण से अभिन्न रूप से जुड़ा है, शासक वर्ग के स्वार्थ में राजनीति से विमुख किया जा रहा है।

इस मोड़ पर, समतापूर्ण सामाजिक व्यवस्था बनाने के लिए संघर्ष के अभिन्न हिस्से के रूप में, विश्व कम्युनिस्ट आन्दोलन को विकास के ऐसे वैकल्पिक मापदण्ड को ठोस रूप में पेश करना अब भी बाकी है जो प्रकृति और मानव समाज के सामंजस्यपूर्ण सह–विकास की पक्षधर हो। उपनिवेशवाद से नव–उपनिवेशवाद में रूपांतरण के संदर्भ में, साम्राज्यवाद ने समाजवाद और प्रगतिशील जन आन्दोलन के खिलाफ एक वैचारिक हथियार के रूप में स्वयं *विकास* शब्द का इस्तेमाल करने के लिए जोरदार प्रयास किया। अनौपनिवेशीकरण के समय ही, ''आधुनिकीकरण के सिद्धान्तकारों'', कीन्सवादी नीतियों के विशेषज्ञों और साम्राज्यवादी चिंतक समूहों ने, जो अमेरिकी सामाजिक विज्ञान की संस्थाओं, अमेरिकी गृह विभाग और ब्रेटनवुड्स संगठनों के साथ घनिष्ठ रूप से जुड़ थे, 'विकास का एक सार्वभौमिक सिद्धान्त' या 'विकास का मापदण्ड' प्रतिपादित किया था जिसे पूरी दुनिया में लागू किया जाना था, भले ही अलग–अलग देशों का ऐतिहासिक विकासक्रम कुछ भी क्यों न रहा हो। सार रूप में, मुख्यधारा के इस विकास मॉडल के तहत, स्वयं विकास को वित्तीय पूंजी के विश्वव्यापी फैलाव के पर्याय के रूप में संस्थागत बना दिया गया, जिसके तहत देशों को अपनी अर्थव्यवस्था को विदेशी पूंजी के अबाध प्रवाह के लिए खोलने की जरूरत थी। 1970 के दशक में ठहरास्फीति का संकट पैदा हाने के साथ इस ''विकास के आशावाद'' के ढह जाने पर, आज वित्तीय सट्टेबाजी के साथ–साथ प्रकृति की लूट नव–उदारवादी संचय का एक बड़ा स्रोत बन गया है। आज जब वित्तीय पूंजी का अन्तरराष्ट्रीयकरण अपनी चरम सीमा पर पहुंच गया है जिसके फलस्वरूप पर्यावरण की अभूतपूर्व त्रासदी पैदा हो गई है, तो पूंजी द्वारा जनता और प्रकृति की लूट के पीछे के संबंधों की गति को समझने तथा प्रकृति, जनवाद और समाजवाद के साथ सामंजस्य रखते हुए जनपक्षीय विकास के लम्बे रास्ते पर चलने की जरूरत है।

निष्कर्ष

समसामयीक साम्राज्यवाद की प्रमुख प्रवृत्तियों का विश्लेषण करते समय, यह स्पष्ट करना जरूरी है कि अतीत के संकटों के विपरीत, जिसमें अस्थाई रिकवरी सम्भव होती थी, नव–उदारवाद के तहत साम्राज्यवादी संकट ने असमाध्येय रूप ग्रहण कर लिया है। साम्राज्यवाद का दिन–ब–दिन तीव्र होता मौजूदा वैश्विक संकट इसमें निहित सभी अन्तर्विरोधों की अभूतपूर्व स्तर पर पुनरावृत्ति और ढेर लग जाने का परिणाम है। इसके अलावा, भूमण्डलीकरण के विगत पचीस वर्षों के दौरान वित्तीय पूंजी के अन्तरराष्ट्रीयकरण के चलते दुनिया के किसी एक हिस्से में पैदा होने वाले संकट वैश्विक संकट का रूप ले लेता है।

चूंकि साम्राज्यवादी व्यवस्था और समाजवादी ताकतों के बीच जीवन–मरण का संघर्ष नये–नये रूप लेते हुए जारी है और चूंकि यह मानव जाति के भविष्य को निर्धारित करने वाला मौलिक अन्तर्विरोध है, इसलिए दुश्मन के किसी भी कदम को समझ पाने में की गई कोई भी गलती घातक पराजय की ओर ले जा सकती है। साम्राज्यवाद का उसके नव–उपनिवेशिक चरण में वैज्ञानिक समझ कायम किये बिना अब तक लगे आधातों का सही ढंग से मूल्यांकन नहीं किया जा सकता है और अन्तर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट आन्दोलन की आम दिशा को सही ढंग से पेश नहीं किया जा सकता है।

साम्राज्यवाद के नव–उपनिवेशिक चरण में आये बदलावों को स्वीकार करने से इन्कार करते हुए कम्युनिस्ट क्रान्तिकारियों के कई हिस्से पुरानी समझ के आधार पर अब भी राजसत्ता को अर्द्ध–उपनिवेशिक बताते हैं और कृषि क्षेत्र के अर्द्ध–सामन्ती मूल्यांकन से चिपके हुए हैं। 1960 के दशक तक देश के बड़े हिस्से में प्राक्–पूंजीवादी सम्बन्ध मौजूद थे, किन्तु 1980 के दशक के आते–आते कृषि क्षेत्र में पूंजीवादी सम्बन्ध हावी रूझान बन गया था। वर्तमान समय में, नव–उदारवादी नीतियों को थोप दिये जाने के बाद, प्राक्–पूंजीवादी शोषण के केवल अवशेष ही बचे हुए हैं और *द्वितीय हरित क्रान्ति* जैसी नीतियों के तहत कृषि क्षेत्र का कारपोरेटीकरण तेजी से बढ़ रहा है। दूसरी तरफ, उपरोक्त बदलावों को नव–उपनिवेशिक चरण में वित्तीय पूंजी के गति के नियमों के संदर्भ में देखने से इन्कार करके, 1970 के दशक के अन्त में एक अन्य प्रवृति ने जन्म लिया था जो भारत को पूंजीवादी देश कहता हैं।

आज के वैश्वीकृत साम्राज्यवाद से जन्म लेने वाले आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और पर्यावरण के संकट से मानवजाति के अस्तित्व पर ही खरता मंडराने लगा है। यह संकट व्यवस्था का है और साम्राज्यवादी व्यवस्था के अन्दर असमाध्येय है और इसमें जोड़तोड़ की गुंजाइश तेजी से कम होती जा रही है। तथापि, जैसा कि लेनिन ने कहा था, पूंजीवाद के लिए कोई संकट अंतिम नहीं होता है। जब तक साम्राज्यवाद को उखाड़कर फेंका नहीं जाता है, तब तक वह जनता के पीठ पर ज्यादा से ज्यादा भारी बोझ लादकर अपने अस्तित्व को बचाये रखने की रणनीति तलाशते रहेगा। अन्तरराष्ट्रीय मजदूर वर्ग के नेतृत्व में एक राजनीतिक विकल्प के साथ क्रान्तिकारी हस्तक्षेप ही एकमात्र समाधान है। इस जीवन–मरण के कार्यभार को एक नया आधार प्रदान करने के लिए वित्त पूंजी के आज के गति नियमों की ठोस समझ के आधार पर साम्राज्यवाद के मार्क्सवादी सिद्धान्त को और ज्यादा समृद्ध किया जाना चाहिए।